॥ ओ३म् ॥

* ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप को नमोनमः *

वृक्षजीव मीमांसा दर्शन ।

जिसके निमित्त कारण श्री महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज और श्री स्वामी दर्शनानन्दजो परोपकारी वीर हैं।

अनुमान २०० दो सौ प्रमाण स्वामी दयानन्द जी के वृक्षों को निर्जीव बनानेवाले इस पुस्तक में छपेंगे।

देखो यजुर्वेद अ० १७ मंत्र ३२

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

यह आर्य्यसमाज का चौथा नियम है।

लेखक—तथा प्रकाशक,

गरीब रामजीलाल जाट।

सेवक सदर समाज देहली।

सम्वत् १९८५ सन् १९२८ ई०

जीववाले थक जाते हैं, जड़ पदार्थ नहीं थकते हैं। महाबली हाथी ओर ऊंठ आठ पहर खड़े नहीं रह सकते कारण क्या है वृक्ष दो हज़ार वर्ष तक खड़ा रहता है।

प्रथम बार १०००

कुंवर बलरामसिंह भदौरिया द्वारा राजेन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस, देहली में, मुद्रित।

मूल्य ।-)

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

श्रीमान् मनुष्य समाज के सब सज्जन स्त्री और पुरुषों से मेरी सादर प्रार्थना है, कि आप मेरी भूल चूक को माफ़ करेंगे और मेरी ढिठाई पर ध्यान न देकर मेरे परिश्रम का ख्याल करते हुए व शुद्धि अशुद्धि का विचार न करते हुए, सच और मिथ्या की छानबीन करते हुए व मेरे को सब एतराज से मुक्त करते हुए जीव अजीव के लक्षण को लक्ष्य में लेते हुए धर्मरूप तराजू पर तोलकर न्याय रूप निर्णय करेंगे। जिसके बाद में सत्य का ग्रहण और मिथ्या का त्याग करना और कराना धर्मधारी पुरुषों का काम है।

इस पुस्तक की रचना का कारण यही है कि कुछ पुरुष जो कि पढ़े लिखे होकर भी वेदमार्ग को त्यागकर अपनी बुद्धि रूपी मार्ग पर चलने लगे। जैसे लोगों ने वेद विरुद्ध पुराण बनाये थे वैसे ही इन्होंने भी वेद विरुद्ध पुस्तकें लिख लिख कर तैय्यार कर दीं, यह सब जो कुछ भी हुआ है इन सबके आलस का फल है। इन सबने अपनी कमजोरियों को निकालकर श्रीस्वामी दयानन्दजी सरस्वती के सिर पर मढ़कर भोले लोगों में अपना प्रभाव जमा

लिया है। इस पुस्तक में वेद और श्री स्वामी दयानन्द जी का लेख ज्यादातर रखा जायगा। वर्तमान प्रचलित सब धर्म ग्रन्थों में वेद ही सच्चा धर्म ग्रन्थ है सचाई उसको कहते हैं कि जो व्यवहार में मिलती हो। "जीवेम शरद् शतं" यह वेद मन्त्र कहता है कि मनुष्यों की आयु लगभग १०० वर्ष की होती है इसीसे यह बात वेद की व्यवहार में मिलती जुलती होने के कारण वेद ही सच्चा है और ग्रन्थों में घनी २ आयु लिखी है जो व्यवहार में विरोध करती है। वेद के गायत्री मन्त्र में बुद्धि के लिये प्रार्थना की गई है जो बुद्धि ऐसी वस्तु है कि जिससे धन व राज्य तक प्राप्त हो जाता है और वेद ही सब ग्रन्थों से पहिले का होने से पुराना है बाकी सब ग्रन्थ पीछे के हैं।

विशेषकार्येष्वपि जीवानाम। अ० १।६७ सांख्य दर्शन।

यह जीव की पहिचान बताई है कि जिस शरीर में विशेष क्रिया चलना फिरना, जो क्रिया इन्द्रियों से होती है उसी को विशेष क्रिया कहते हैं। वृक्षों में हलन चलन क्रिया नहीं है इसी से बिना जीव के हैं।

विषिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकात्।

सांख्यदर्शन अ० ६।६३

अर्थ-जो ईश्वर के गुणों से पृथक् शरीरादि युक्त है उसको जीव संज्ञा से बोलते हैं इस बात को अन्वय व्यतिरेक से जानना चाहिये। अर्थात् जीव के होने से शरीर में बुद्धि का प्रकाश और न होने से बुद्धि आदि का अप्रकाश दीखता है।

टिप्पणी—इस सूत्र में यह बताया है कि शरीर में विशेष क्रिया जो

इन्द्रियों की हलन चलन बुद्धि अर्थात् ज्ञान भी हो उसी को जीव-धारी जानो। वृक्षों में न ज्ञान ही है और न चलने फिरने की शक्ति है इसी से वृक्ष निर्जीव है देखो इसमें प्रमाण।

(साशनान०) यह जगत् दो प्रकार का है, एक चेतन जो कि भोजनादि के लिये चेष्टा करता और जीव संयुक्त है और दूसरा (अनशन) अर्थात् जो जड़ और भोजन के लिये बना है। क्योंकि उसमें ज्ञान ही नहीं है और अपने आप चेष्टा भी नहीं कर सकता। परन्तु उस पुरुष का ही अनन्त सामर्थ्य है! ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १२२ में देखो।

टिप्पणी-श्री स्वामी जी ने इस लेख में वृक्षों को ज्ञान से रहित और क्रिया इन्तजामी बताई है जो यह शब्द आये हैं कि (ये) जड़ हैं और भोजन के लिये बने हैं भोजन यही फल फूलको कहते हैं जो वृक्षों में होता है खाने की वस्तु गाजर, मूली, तरबूज चने आदि का शाक ईख के गन्ने का गुड़। बात यह हैं कि वृक्षों को उन्होंने जड़ ही लिखा है। श्री स्वामी जी कहते हैं कि क्रिया उसे कहते हैं जो इन्द्रियों से होती हैं वृक्ष के इन्द्रिय नहीं इसीसे वृक्ष क्रियाशून्य है देखो क्रिया के विषय में प्रमोण।

(४८) कर्म जो मन इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्टा (विशेष) करता है वह कर्म कहाता है शुभ अशुभ और मिश्र भेद से तीन प्रकार का है। आर्य्योद्देश्य रत्नमाला में देखो।

वेदाङ्गप्रकाश के पुस्तक भाग दश की भूमिका में श्री स्वामी जी महाभाष्य अ० १ पा० ३। सू० १ आ० १+क्रिया उसको कहते हैं कि जो कुछ आत्मा, मन प्राण, इन्द्रिय और शरीर से चेष्टा होती है जैसे हाथ पांव चलते हैं वही क्रिया है। यह महा

भाष्य का प्रमाण है। इन सब बातों से वृक्ष जड़ ही सिद्ध होते हैं। श्री स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश के पृ० ११ में बताया है कि चलते फिरते जीव हैं और स्थावर जड़ अप्राणी हैं बिना जीव के।

श्री स्वामी जी ने यह लिखा है कि दो प्रकार का जगत् है जिसमें एक खाने के लिये प्रयत्न करता है और जीव संयुक्त है और दूसरा (अनशन) जड़ है और खाने के लिये बना है क्योंकि उसमें ज्ञान ही नहीं है और अपने आप चेष्टा भी नहीं कर सकता यह सब वृक्षों के लिये ही कहा है। देखो इसमें प्रमाण भी है।

अथर्व० का० २०।१६।८ में जैसे वृक्ष से अन्न अर्थात् फल लेते हैं ऐसे जानो कि खाद्य पदार्थ वृक्ष ही है और इन्हींको जड़ बिना जीव के कहा है। और देखो अथर्ववेद का० उन्नीस सू० ३१।म० ३ में।

भावार्थ आराम वाटिका फल आदि के लिये (अन्न भोजनादि) के लिये और भूमि राज्य खेती आदि के लिये इन सब प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि वृक्ष ही खाने के लिये बने हैं और स्वामी जी ने वृक्षों को ही जड़ बिना जीव के कहा है जहां कहीं स्वामी जी के लेख में जीव का वृक्ष में जाना लिखा है वह अनुसाई रूपसे है अभिमानी जीव का वृक्ष के लिये स्वामीजी निषेध करते हैं। वैदिक ऋषि मुनियों की लेख शैली समझने के लिये निर्मल बुद्धि की जरूरत है जिसके शुद्ध विचार हैं वही जान सकता है सब नहीं जान सकते। वैदिक ऋषि मुनियों की रीति ऐसी है कि किसी विषय का निर्मल फैसला व निर्णय एक स्थान पर कर देते हैं। बाद में उसी निर्णय के असूल पर लेख लिखते रहते हैं। अब

इस बात के लिये एक उदाहरण मैं लिखता हूं। य० वेद अ० १६ मंत्र ७ में देखो।

(सर्पेभ्यो नमः) अर्थ—बन व जंगल में रहनेवाले डाकुओं को और सर्पों को वज्र आदि हथियारों से निवारण करो। "नमः" का अर्थ नेवना है मैं तेरे सामने नेवता हूं ऐसा अर्थ है। पर और स्थानों पर सर्प आदि का मारना लिखा है इसीसे इस स्थान पर (नमः) शब्द का अर्थ मारना किया है। और भी देखो।

यथा सत्यं चानृतं च न विभीतो न रिष्यतः एवा मे प्राण मा बिभेः। अथर्व०का० २।१५।५में देखो।

अर्थ—यथा जैसे (च) निश्चय करके [सत्यं] यथार्थ [च] और [अनृतम्] अयथार्थ [न] न (रिश्वतः) दुख देते और [न] न [विभीतः] डरते हैं [एव] वैसे ही [मे] मेरे [प्राण] तु [मः बिभे मत डर। देखो सत्य और असत्य किसी पर रिष्यते नहीं हैं मूल मन्त्र में ऐसा आया है अगर इस लेख को ज्यों का त्यों ही मान ले तो अत्याचार हो जाय जैसे इस लेख का अर्थ मूल को छोड़कर व्यवहार सम्बन्धी अर्थ होता है ऐसा ही जहां कहीं वृक्षों में जीव होने का लेख आवे तो उस लेख का भी अर्थ अनुसाइ जीव का जानो। अनुसाइ जीव उसे कहते हैं जैसे गूल-रादि के फलों में कीड़े आदि को कहते हैं जैसे लकड़ी में घुन के कीड़े, जैसे हमारे कपड़ों में जुएं जो हैं वह हमारे अनुसाइ जीव हैं। यह वैदिक शैली है कि शरीर धारण करके जीव वृक्षों में रहता है इसमें वेद मन्त्र का प्रमाण भी है। देखो:—

यदि तत्रते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ।

ऋग्वेद मं० १०।१६।३ में

अर्थ—जीव शरीर सहित व देह धारण करके (प्रतिष्ठा) माने सब किस्म के रूख वा पेड़ों में कीट पतङ्गादि शरीर धारण करके वृक्षों में बसता है। जो वेदों का मत है वही उपनिषदों का मत है और वही दर्शनों का मत है भेद नहीं है। देखो।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्नेऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथा श्रुतम् ॥

पदार्थ [अन्ये] कोई एक [देहिनः] प्राणी [यथाकर्म यथा-श्रुतं] अपने २ कर्म तथा ज्ञान के अनुसार [शरीरत्वाय] शरीर धारण करने के लिये [योनिः] जन्म को [प्रपद्यन्ते] प्राप्त होते हैं [अन्ये] कोई एक [स्थाणु] सूखे हुए काष्ठादि में वा सूखे हुए वृक्ष में "स्थाणु" शब्द का अर्थ सूखे वृक्ष का होता है सूखे वृक्ष में जीव कीड़ादि जन्म लेते हैं।

स्थोणुः ॥३७॥ स्थाणु ॥३७॥ उणादि कोष में देखो।

(३७) "तिष्ठतीतिस्थाणु शुष्क वृक्षो निश्चलो वा" यह श्रीस्वामी जी का भाष्य है। और भी देखो कठो उ० भी वृक्षों में जीव नहीं मानता।

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानंमत्वा धीरो न शोचति ॥

कठो ॥४।४॥

पदा०—[येन] जो [स्वप्नान्तं] जड़ जगत् [च] और [जाग-

रितान्तं] प्राणीमात्र जगत् [उभौ] इन दोनों का [अनुपश्यति] साक्षी है उस [महान] सबसे बड़े [विभु] व्यापक [आत्मानं] आत्मा को (मत्वा) जानकर (धीरः) धीर पुरुष [न शोचति] शोक नहीं करता।

"भाष्य स्वप्नः अन्तो निष्कर्षो यस्य तत्स्वप्नान्तं जगत्" स्वप्न हो तत्व जिसका हो उसका नाम "स्वप्नान्तं" है। इस प्रकार स्वप्नान्तं पद से जड़ जगत् का ग्रहण है। और जागरितान्तं पद से प्राणि मात्र चेतन जगत् का ग्रहण है। देखो आर्य्यमुनि का भाष्य। और वह दोनों जो चराचर हैं ऐसा लिखा है। इससे सिद्ध हो गया कि उपनिषद वृक्षों में जीव नहीं मानते हैं और भी देखो।

नित्योनित्यानां चेतन श्चेतननां एको वहुनां।

कठो ॥ ५।१३ में।

पद्या०-जो नित्यानां प्रकृत्यादि नित्य पदार्थों में [नित्यः] नित्य [चेतनानां] जीवरूप चेतनों में [चेतनः] चेतन [बहुनां] बहुतों में [एक] एक है। भाष्य जो। परमात्मा इस चराचर जगत् के नित्य पदार्थों में नित्य-कुटस्था व्यापक है देखो इसमें भी चर मनुष्यादि जंगम अचर वृक्षादि स्थावर इन्हीं दोनों को जड़ वा चेतन कहा है।

(६७)-आप ज़रा श्री स्वामी जी का किया हुआ जड़ तथा चेतन का लक्षण भी देखो।

जड़-जो वस्तु ज्ञानादि गुणोंसे रहित है उसको जड़ कहते हैं।

(६८)-चेतन-जो पदार्थ ज्ञानादि गुणों से युक्त है उसको चेतन कहते हैं। आर्योद्देश्य रत्नमाला।

और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ १२२ में स्वामी जी लिखते हैं कि वृक्ष लतादि में न ज्ञान है और न क्रिया है, वह ये वृक्षादि का नाम भोजन के लिये बने हैं ऐसा रखा गया है।

न वाह्यबुद्धिनियमो वृक्षगुल्म लतौषधिः वनस्पति तृणवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगाय तनत्वं पूर्ववम्।

सांख्यदर्शन ॥५।१२१

अर्थ—जिसमें वाह्य बुद्धि होती है उसको शरीर कहते हैं। यह नियम भी नहीं है क्योंकि मृतक शरीर में वाह्यबुद्धि नहीं होती है तो क्या उसको शरीर नहीं कह सकते हैं। और "वृक्ष गुल्म औषधि" वनस्पति तृण विरुद्ध आदिकों में बहुत से जीव भोग के निमित्त रहते हैं और उनका बाहर के पदार्थों के ज्ञान से ही शरीर माना जावे तो उनके शरीर को शरीर न मानना चाहिये।

प्रश्न—क्या वृक्षों में जीव है कि नहीं (उत्तर) वृक्ष में जीव नहीं है (प्रश्न) श्री स्वामी तुलसीरामजी ने इस सूत्र के भाष्य में वृक्षों को जीव सहित माना है। (उत्तर) इस सूत्र में भोगता पद आया हैं और वृक्ष भोग्य पदार्थ है भोगता नहीं, दूसरी बात यह है कि वृक्षों में प्रीति नहीं है और प्रीति के बिना भोग नहीं होता है। प्रीति के अर्थ राग के हैं जो जीवात्मा का निजी लक्षण जिस वस्तु का जीवात्मा भोग करता है उस वस्तु पर जीव प्रीति जरूर ही करता है परन्तु इससे क्या सिद्ध हुआ कि जीवात्मा के बिना ज्ञान नहीं और ज्ञान के बिना राग अर्थात् प्रीति नहीं और प्रीति के बिना भोग नहीं होता है ऐसा जानो। कि वृक्षों के अन्दर जो कीड़े भोग के निमित्त बसते हैं उनके लिये कहा है महर्षि

कपिल जी ऐसी बुद्धि नहीं रखते थे कि जो बाहर के पदार्थ हैं उन सबका वृक्षों को अनुभव होता है देखो धूप में वृक्ष कुम्हलाता है ठण्ड में वृक्ष की गर्दन झुक जाती है और त्वचा इन्द्रिय वृक्ष की मनुष्य के समान बाहर ही है अगर वृक्ष में अभिमानी जीव होता तो उसकी त्वचादि के बाहर के हवा व धूप जरूर ही लगते हैं इन सबको क्या महर्षि कपिल जी नहीं समझते थे? इसीसे तो उन्होने भोगता पद रखा हैं और भोग प्रीति के बिना होता नहीं है। देखो इसमें प्रमाण—

"वृक्षःकृत्सम्" यह उणादि कोष ३।६६ में देखो। श्री स्वामी दयानन्द जी का भाष्य है—"वृक्षजातिः प्रीति हीनोवा" जब श्री स्वामीजी वृक्षों में ज्ञान व प्रीति नहीं मानते और क्रिया भी वृक्षोंमें इन्तजामी मानते हैं। जैसे भूमिका के पृष्ठ १२२ में लिखते हैं कि न वृक्षों में ज्ञान ही है और अपने आप चेष्टा भी कर सकते हैं तो बताइये अब श्री स्वामी दयानन्द जी की बात मानी जाय कि स्वामी तुलसीरामजी की बात मानी जाय? जैसे घी ठण्ड में सिकुड़ जाता है और गर्मी में फैल जाता है वा अग्नि ठण्ड में बलहीन हो जाता है ऐसे ही वृक्ष भी सरदी गर्मी को मानते हैं। गर्मी सरदी का असर जड़ पदार्थों पर भी होता है। गर्मी के वेग से चने और चावल हंडिया में बढ़ जाते हैं। जो बड़ी २ कोठियों में शीशे लगे हुए हैं उन शीशों में सरदी के समय में पसीना हो जाता है जैसे घी गर्मी से पिघलता है ऐसे ही नमक सर्दी से पिघलता हैं। गर्मी और सर्दी से जड़ पदार्थों में भी परिवर्तन होता है। और प्रमाण देखो वृक्ष निर्जीव होने में।

चिदचिद्वस्तुभ्यामीश्वर एव निखिलं चराचरात्मकं जगत् प्रजापति रूपेण।

प्रश्नोपनिषदि प्रथम प्रश्न पृ० २३४ आर्य्यमुनि का भाष्य।

अर्थ-जड़ चेतन रूप सारे संसार को परमात्मा समय के चक्र से घुमा रहा है। देखो "चिदअचिद्व चराचरात्मकं जगत्" चिद् चेतन जो चर व जंगमों के लिये आया है और अचिद्व अचर जो स्थावर है उनके लिये आया है। जंगम मनुष्यादि है और स्थावर वृक्षादि हैं। इस सूत्र के मूल पद में बताया है कि वृक्ष निर्जीव है।

"इदं प्राणिजंगमं च" ऐतरेयोपनि० ।५।३

(इदं) यह दृश्यमान (प्राणि जंगमं) प्राणी जान है (यह) भी जंगमों को ही प्राणी मानता है। जैसा वेद मानते हैं ऐसा ही उपनिषद् भी मानते हैं और दर्शन शास्त्र भी ऐसा ही मानते हैं। और भी देखो जैसे इस पृथ्वी पर के सब देव, देवी, जल, अग्नि, वृक्ष बनस्पति आदि सर्वथा जड़ हो हैं। वे कुछ भी नहीं कर सकते। वैसे ही रातद्व्यतिरिक्त लोकों में भी विद्युत्, वायु, मेघ, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि भी जड़ हैं। वे कुछ भी किसी का नहीं कर सकते। एवं जैसे यहां के चेतन पुरुष, पशु, पक्षी, आदि न तो कर्म फल दे सकते हैं और न ले सकते हैं।

यथेह पृथिव्य सर्वेदेवापृथिवो जलमग्निवृक्षा वनस्पतय इत्येतदादयः सर्वे जड़ाः सन्ति। मयैवोपभोज्या न ममविघ्नमुत्पादयन्ति न चेत-

दधि कारिणः एवमेवान्तरिक्षे द्युलोके च विद्युद्वायुमेघ्यः चन्द्रमाः सूर्येनक्षत्राणि इतयेवं प्रभृतयः सर्वे पदार्थाः प्रायः जड़ाः सन्ति। ते स्वेच्छया किमपिविधातुं न शुक्नुवन्ति एवञ्च यथेमे चतना मनुष्याः पशवः पक्षिणः॥

छा० उ० प्रपाठक २॥ खण्डः २४ प्रवाक २। श्लोकः २ में।

वा अप्राणिजातेश्चारज्ज्वादीनामुः वेदाङ्गप्रकाश। भा० ५।१२५

इस सूत्र के भाष्य में श्री स्वामीजी ने "अलाबु. और कर्कन्धूः इन दोनों को अप्राणी लिखा है और अप्राणि उसको कहते हैं जिसमें जीवात्मा न हो और ऐसा ही लघुकौमदी में भी लिखा है। और कर्कन्धू जिन वृक्षों में बेर लगते हैं उनको कहते हैं और अलाबु तुम्बिदि की बेल को कहते हैं। तो फिर क्या शंका रह गई वृक्ष निर्जीव होने में जब लघुकौमदी के कर्ता ने भी कर्कन्धुदि को अप्राणी लिखा और श्री स्वामी दयानन्दजी भी यही लिखते हैं कि वृक्ष अप्राणी हैं।

"जातिरप्राणिनाम" यह सूत्र अष्टाध्यायी का है इसमें पं० भीमसेन जी पौराणिक का भाष्य" जातिअप्राणिनाम" अर्थ प्राणि वर्जित जिनमें जीव नहीं है वह पदार्थ जो निर्जीव हैं जैसे खाट और बिछाने का बिस्तर आरा कपोत आदि औजार ऐसे बिना जीव वाले पदार्थों को अप्राणि कहते हैं।

अब श्रीमान् पं० गणपति शर्म्मा जी ने श्री पूज्य स्वामी दर्श-

नानन्द जी से शास्त्रार्थ करते समय दो वेद मन्त्र वृक्षों में जीव हैं इसको प्रमाण पूर्ति के लिये पेश किये हैं वह यह है।

जीवला न घरिषां जीवन्तीमोषधीमहम्ः।

अथर्ववेद का० ८ सू० ४।६

अर्थ-(जीवला) जीवन लानेवाली जो उसको खाता पीता हैं वह पुष्ट होता है ऐसी औषधि ईश्वर ने उत्पन्न की है। न घरिषां] खानेवाले को दुःख नहीं देती, परन्तु सुख देनी है ऐसा अर्थ है। [जीवन्ती ओषधीअहम्] [अहम्] ईश्वर कहता है कि वृक्षों आदि में जीवन शक्ति मेरी तरफ से हैं जीव की तरफ से नहीं है। इससे तो और भी वृक्ष निर्जीव सिद्ध होते हैं सजीव नहीं।

[जीवन्तीओषधी] इस शब्द का अर्थ गौणता से लिया जायगा [प्रधान] अर्थ नहीं हो सकता है क्यों कि जब [जीवन्ती] शब्द का अर्थ प्रधान करोगे तो फिर [नघरिषां] शब्द का अर्थ भी [प्रधान] ही लेना होगा [नघरिषां] शब्द का प्रधान अर्थ क्रोधित होना है क्रोध आप वृक्षों में नहीं दिखा सकते हो। क्योंकि जिसमें क्रोध होता है उसमें ज्ञान जरूर ही होगा और जिसमें ज्ञान होगा उसमें प्रीति जरूर होगी। और व्याकरण की रीति से इन सब बातों का निषेध होता है देखो उणादिकोष। ३।६६ में "वृक्ष कुत्सम्"। यह सूत्र है इसका अर्थ श्री स्वामीजी ने ऐसा किया है कि "वृक्षजातिः प्रीति हीनोवा" अब दूसरा मन्त्र भी देखिये।

इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः।

का० १।३२।१

इस मन्त्र का ब्रह्मा ऋषिः और ब्रह्म देवता है जो जिसका देवता होता है उस मन्त्र में उसी के गुणों की उपमा का वर्णन होता है इससे इस मन्त्र में ब्रह्म के गुण की उच्चता दिखाई है अगर वृक्षों में प्रधान जीव माना जाता तो बस वृक्ष के ही ऊंचे गुण का वर्णन हुआ तो ब्रह्म देवता क्यों हुआ ? वृक्ष देवता होना चाहिये था। इस र यह विचारना चाहिये कि वृक्ष में समान जीवन अर्थात् क्रिया अन्तर्यामी है ईश्वर के प्रबन्ध से वृक्ष आदि बेल आकाश बेल जो बिना धरती में जड़ के अधर में ही हरी रहती है उसी के लिये इस मन्त्र में उपदेश किया है। आकाश बेल, बन्दा बेल, सिंघाड़ों की बेल, जल काई की बेल इत्यादि सबकी जड़ अधर में है।

भाषार्थ–[जनासः] हे मनुष्यो [इदम्] इस बात को [विदथ] तुम जानते हो वह [ब्रह्मज्ञानी] [महत्] पूजनीय [ब्रह्म] पारब्रह्म का [वदिष्यति] कथन करेगा [तत्] आकाश वेलादि लता [न] न तो [पृथिवी] भूमि में [नो] और न [दिवि] सूर्य्यलोक में है [येन] जिस परमात्मा के सहारे से अधर रहनेवाली आकाश बेल आदि जैसे सिंघाड़े की बेल वा जल पर काई इन सबकी जड़ भूमि में नहीं है। "येन प्राणन्ति विरुध" अर्थात् ईश्वर की सामर्थ्य से बेल हरी रहती है यही तात्पर्य है कहीं जीव की वृक्षों में गन्ध भी नहीं है। दूसरी बात यह है कि इस मन्त्र में ब्रह्म के गुणों का वर्णन है इसकी जोड़ी का दूसरा मन्त्र मैं पेश करता हूं।

अथ ब्रह्मविद्याविषयः। ऋ०वेदादि भाष्य भूमिका पृ०८८

देखिये यह मन्त्र जो ब्रह्म के गुणों का गान करता है और

इस पर श्री स्वामी दयानन्द जी का भाष्य है इसमें वृक्षों को बिना जीव के जड़, भूमि, पर्वत यह सब स्थावर कहलाते हैं। और जिस जिस ठिकाने वेद में ब्रह्म के गुण गाये हैं उस २ स्थान पर एक मन्त्र जड़, चेतन के निर्णयार्थ जरूर ही आया है उसमें सब जगह मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्गादि तो एक अर्थ में रहते हैं और पृथिवी पर्वत वृक्ष बेल घासादि एक अर्थ में रहते हैं। अब देखो मन्त्र क्या कहता है। यह पूर्व मन्त्र का जोड़ीदार मन्त्र है।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिः।

("तमीशानम्) ईषेड सावीशानः सर्वजगत्कर्त्ता (जगत्-स्तस्थुषस्पतिं) जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य" यह संस्कृत का अर्थ है।

प्र०—वेदों में सब विद्या है वा नहीं। उ०—सब है क्योंकि जितनी सत्य विद्या संसार में हैं वे सब वेदों से ही निकली हैं उनमें से पहिले ब्रह्मविद्या संक्षेप से लिखते हैं। "तमीशानः" जो सब जगत् का बनानेवाला है (जगतस्तस्थुषस्पति) अर्थात् जगत् जो चेतन और तस्थुष जो जड़ इन दो प्रकार के संसार का जो पालन करनेवाला है।

देखो इसमें (जगत्) जंगम जो चेतन और जीव सहित चलता फिरता सांस लेनेवाला भोजन करनेवाला है। मनुष्यादिकं कीट तक। (तस्थुष) स्थावर जड़ बिना जीव के वृक्षादि हैं। अब कहो कि एक पं० गणपति शर्मा जी का पेश किया हुआ मन्त्र वृक्षों को जीववाला कैसे सिद्ध कर सकेगा? कभी नहीं कर सकता है।

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृ० १ में श्री स्वामी जी का लेख है

कि (संस्कृत प्र०) सो यह वेदभाष्य दो भाषाओं में किया जाता है एक संस्कृत और दूसरी प्रकृत इन दोनों भाषाओं में वेदमन्त्रों के अर्थ का वर्णन [मैं] करता हूं।

अब पृ० १२२ में के "साशनानशने" इस पद के दोनो संस्कृत और प्रकृत अर्थ को मैं मिलाकर लिखता हूं विचारपूर्वक पढ़िये।

[साशनानशने] "यदेकमशनेन भोजन करणेन सहवर्तमानं जंगमं जीवचेतनादि सहितं जगत्" [प्रकृत०] [साशनान०] सो दो प्रकार का है एक चेतन जो कि भोजनादि के लिये चेष्टा करता और जीव से युक्त है। यह जंगम जीव वालों का अर्थ हुआ है जो मनुष्य से लेकर कीड़े मकौड़े तक है। "द्वितीयमनशनम विद्यामान मशनं भोजनं यस्मिंस्तत्पृथिव्यादिकं च यज्जड़ं जीव सम्बन्ध रहितं" प्रकृत अर्थ यह दूसरा अनशन अर्थात् जो जड़ और भोजन के लिये बना है क्योंकि उसमें ज्ञान ही नहीं है और अपने आप चेष्टा भी नही कर सकता है देखो वृक्षों को ही जीव सम्बन्ध से रहित कहा है। वही खाने के लिये बने हैं। इसमें प्रमाण अथर्व का० ४ सूक्त ३८। मं० ७ में घास भोजन है ऐसा अर्थ है और का० १९ सू० ३१। मं० ३ में अन्न भोजन है ऐसा अर्थ है और का० २०। सू० १६। मंत्र ८ में [चमसं न वृक्षाद] अन्न वृक्ष है और वृक्ष के फल अन्न हैं। देखो जो जड़ और भोजन के लिये बना है वह जीव सम्बन्ध से रहित है। इस लेख से वृक्ष निर्जीव सिद्ध होते ही नहीं बल्कि हो गये हैं वृक्ष जड़ विना जीववाली प्रकृति है (और क्योंकि उनमें ज्ञान नहीं है) इस ज्ञान के निषेध से भी वृक्ष जड़ हो सिद्ध होते हैं क्योंकि जो जीवधारी शरीर है

उसमें थोड़ा बहुत ज्ञान जरूर ही होता है ज्ञान जीवात्मा का स्वाभाविक गुण है। और वृक्षोंमें ज्ञान का स्वामी जी निषेध करते हैं इससे ये भी एतराज उन पर पूरा होता है। और जो स्वामी जी कहते हैं कि [ये] अपने आप चेष्टा भी नहीं कर सकते हैं। उस पुरुष की तरफ से क्रिया इन्तजामी है सो भी उन्होंने ठीक ही कहा है।

देखो और भी आपका भ्रम मिटा देता हूं ऊपर मैं ने यह लिखा था कि अलाबु वा कर्कन्धु को श्री स्वामी जी ने अप्राणी लिखा है और अप्राणी के अर्थ हैं प्राणी वर्जित माने बिना जीव के और अलाबु कहते हैं तूंबो आदि की बेल को। और कर्कन्धु कहते हैं सब छोटे बड़े जितने भी बेरों के पेड़ हैं उनको।

इतनी बात और ध्यान में रखने योग्य हैं कि गौण भाव से तो सबही उत्पन्न पदार्थों को शरीर कहते हैं पर मुख्य भाव से शरीर जीवधारी को ही कहतेहैं। देखो

त्वष्टा रुपाणिहि: प्रऽभु: पशुन: ॥ ऋ० वेद म० १। सू० १८८। म० ६ नौ में ॥ भावार्थ-जैसे ईश्वर न सूक्ष्म कारण रुप प्रकृति से कार्य्य चित्र विचित्र सूर्य्य चन्द्रमा पृथिवी औषधि। और मनुष्य के पशुओं के शरीरादि अवयवादि वस्तु बनाई है। इसमें देखो रुपाणिहि: शब्द से तो सूर्य, चांद, भूमि, वृक्ष लिये हैं और पशुन: शब्द से मनुष्य, गाय, घोड़े, कीट, आदि प्राणीमात्र लिये हैं। देखो आगे।

"औषधीषु पशुषु"। अथर्व० का १ .सू० ३० । म० ३ । में खूब देखो।

भावार्थ-(औषधीषू) औषधियों में और (पशुषुः) सब जीवों में ईश्वर व्यापक है। देखो ध्यान पूर्वक जीवधारियों से वृक्ष जुदे अलग हैं। दोनों उक्त मन्त्रों में भावार्थ—विद्वान, सूर्य्य विद्या, भूमि विद्या, वायु विद्या, औषधि अर्थात् अन्न, वृक्ष, जड़ी-बूटी आदि की विद्या। पशु अर्थात् सब जीवों की पालन विद्या। देखो वृक्ष जीवधारियों सेदूर है आर्य ऋषि मुनियोंकी शैलीमें वृक्ष 'निर्जीव हैं' इसमें यह विचार कोई भी पढ़े लिखे नहीं करते कि जब मूल मन्त्र में ही औषधीषु और पशुषु दोनों जीव और निर्जीव जुदे २ हैं तो यह कारण क्या हैं निपट अन्धे ही बन गये जब मूल मन्त्र में पृथिवी पर्वत वृक्ष एक तराजूमें और मनुष्य, घोड़े, गाय, भैंस, बकरी कीट आदि एक में तुलते हैं तो फिर जीव अजीव के निर्णय में क्या कमी रह गई है जब मूल मन्त्र में ही बांट दिये हैं।

श्री स्वामी मंगलानन्द जी पुरी की बुद्धि की तारीफ़ में। जैसे रंधती हुई हंडिया के एक चावलके देखने से सब चावलोंका कच्चे हैं या पक गये ज्ञान होता है। ऐसा ही लाभ इस नीचे के लेख से भी प्राप्त होगा। 'वृक्ष में जीव है इस नाम की पुस्तक के पृष्ट ३३६।

आपकी बुद्धि की तारीफ़ यह है कि आपने विरोधी प्रमाणों को भी अपनी पुष्टि में पेश कर देते हैं। देखिये पृ० ३३६ में लिखते हैं कि हम प्रथम खंड में वृक्षों का सोना जागना प्रकट कर आये हैं और दूसरे खंड में स्वामी दयानन्द के शब्दों में वृक्षों

का सुषुप्ति दशा में होना दर्शा आये हैं। इस लेख से तो स्वामी मगलानन्द जी के तत्व ज्ञान की पोल झलकती है। देखिये-
दोउ काम न होय भुवालू। हँसब ठठावन गाल फुलालू ॥
देखो यह कवियों के कथन हैं कि दो विरोधी गुण एक समय में नहीं होते हैं और आप न तो तीन परस्पर विरोध वाली अवस्था एक ही काल में सोना जगना और सुषुप्ति सिद्ध कर दिये हैं जब ऐसी बुद्धि से ग्रन्थ रचना हुआ करे तो फिर तो नौका बीच धारा में ही लोट पोट होने में क्या शङ्का है।

स्वामी दयानन्द जी वृक्ष में अभिमानी जीव नहीं मानते थे देखो भूमिका पृ० १२२ में लिखते हैं कि दो प्रकार का जगत् है एक जो भोजन आदि केलिये चेष्टा करना और जीव संयुक्त है और दूसरा जो जड़ और भोजन के लिये बना है क्यों कि उस में ज्ञान ही नहीं है और अपने आप चेष्टा भी नहीं कर सकता देखो यह सब वृक्षों के लिये ही कहा है।

फिर स्वामी मगलानन्द जी अपनी पुस्तक में एक स्थल पर लिखते हैं कि हम पाप से भी बच सकते हैं जो वृक्षों के कच्चे फूल फल नहीं तोड़े तो जब फल स्वयं पककर गिर पड़े तो उसको उठाकर खाया करे तो फिर पापी कभी न होंगे। भला यह उपदेश इन का सब कोई मान ले तो थोड़े ही दिन मे उट मटिला होकर बाकी क्या पावे। भला इन के कह ने के माफिक ईख को सुखाकर काटे तो उस में क्या प्राप्ति हो गुड़, शकर, खांडादि पदार्थ कहां से मिले सब्जी हरे शाक आदि के बदले क्या कंकड़ चबाया करें। और ककड़ी, गाजर, मूली, यह सब कच्ची या वा हरी खाई जाती है और बहुत से अन्न भी हरे न काटे

जांय तो उन में कुछ भी न हाथ आवे । जैसे कागणी, चिना, मडवा, ज्वार, बाजरा यह सब हरे ही काटे जाते हैं । अगर इन सब को सुखाकर काटे तो नुकसान पूरा २ बैठेगा । क्या करे बिचारे कभी ईसाई भये कभी आर्य भये इन्हीं झगड़ों में लगे रहे विद्या कहां से हासिल हो । देखो स्वामी मगलानन्द जी ने महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेख को ऐसा कतल किया है कि जैसे कोई दयाहीन जीवते जीव की त्वचा को नोचता है। मैंने ऊपर सिद्ध किया है कि अप्राणी शब्द का अर्थ ब्याकरण की रीति से मुरदे का होता है, प्राणी वरजित अप्राणी होता है और महर्षि दयानन्द जी ने अलाबु कर्कन्धु इनको अप्राणी लिखा है ये दोनों वृक्ष हैं ऊपर देख लेना । "सूर्य आत्मा जगत्स्तस्थुषः" इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात जो चलते फिरते हैं । तस्थुषः" अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ पदार्थ पृथ्वी आदि है । देखो मगलानन्द जी ने इसका भी खण्डन कर डाला ; सू० प्र० पृ० ११ में ॥

य० वेद अ० २५ म० ११ में देखो स्थावर वृक्षादि इसी से स्थावर शब्द वृक्ष का वाची है ।

और भी देखो जो पृथ्वी आदि शब्द में वृक्षों को नहीं मानते वह अनभिज्ञ हैं ।

(प्रश्न) मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई या पृथ्वी आदि की ?

(उत्तर पृथ्वी आदि की, क्योंकि पृथिव्यादि के बिना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता । अब कहो आदि शब्द में वृक्ष है कि नहीं जब जब जड़ वा चेतन का निर्णय आता है तब तब उस स्थान पे वृक्ष वा भूमि एक अर्थ में रहते हैं और

मनुष्य से लेकर कीट पतङ्गादि एक अर्थ में रहते हैं।

और भी देखो जगत् शब्द जीवधारियों का वाची है। और तस्थुष शब्द बिना जीव के पदार्थों का वाची है।

ऋ० वेद म० २ सू० ३१ म० ५ ॥ जगत्=स्थातु ॥ जगत् शब्द का अर्थ मनुष्य आदि किया है। स्थातु शब्द का अर्थ स्थावर वृक्षादि किया है।

ऋ० म० ४ सू० ५३ म० ६॥ में भी यही दोनों। जगत्=स्थातु ॥ (जगत्) जंगम चेतनतायुक्त है।

(स्थातू) स्थावर वृक्ष आदि है। इन अर्थों को कोई भी नहीं बदल सकता।

स्वामी मंगलानन्द जी वा पं० गणपति शर्मा जी दोनों ऐसा मानते हैं कि तोड़े वा स्वयं टूटे हुए फल वा बीज में जीव नहीं होता। इसका मिलान करिये नीचे।

(उत्तर) जो बीज का उपमर्दन करता है वह प्रथम ही बीज में था जो न होता तो उत्पन्न कभी नहीं होता। स० प्र० पृ २२७॥ और देखो।

कहीं २ जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है, जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथ्वी में गिरने और जल पाने से वृक्ष हो जाते हैं। और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं। देखो इस लेख में अग्नि, भूमि, वृक्ष तीनों को एक समान ही जड़ माना है। इन समझदारों ने इसका भी खण्डन कर दिया।

तर्क यह है कि बीज भूमि में गिर कर सड़ गल गया उससे अङ्कुर उत्पन्न होकर वृक्ष कहाने लगा फिर बांस वृक्ष में स्वयं

अग्नि उत्पन्न हो कर वह जड़ वृक्ष नष्ट भ्रष्ट हो गया। स० प्र० पृ० २२२ में॥ और पृ० २२९ में नवमे नास्तिक की तर्क में भी यही लिखा हैं कि बीज पृथवो जल के मिलने से घास वृक्षादि और पाषाणादि उत्पन्न होते हैं। कहीं जीव के आने जाने का जिकर तक भी नहीं हैं। फिर पृ० १६४ में इस प्रकार है कि जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं वे सब अपने २ कर्म और यत्न करते ही रहते हैं। जैसे प्राणी पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते हैं अप्रामी जैसे भूमि आदि घूमते और वृक्षादि सदा बढ़ते घटते हैं। देखो इसका भी समझदारों ने खण्डन कर डाला है। जिस लेख में स्पष्ट कर दिया कि वृक्ष वा भूमि दोऊ अप्राणी हैं। अब पञ्च महायज्ञ-विधि में से लिखता हूं। "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा" अर्थ–सूर्य [जगतः] जङ्गमस्य [तस्थुष] स्थावरस्य च [आत्मा] [ये] संस्कृत है अब प्रकृत॥ [सूर्य आत्मा०] प्राणी और जड़ जगत् का है। देखो इसका पड़ता न्यों बैठता है [जगत्] जंगम प्राणी जो जीवधारी है, [तस्थुष] स्थावर जड़ बिना जीव के।

जरा इस पे भी ध्यान दिये। य० वेद अ० २५। १ में स्थावर वृक्षादि है।

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो।

आर्याभिविनयः प्रथम भा० म० ४४॥

हे मनुष्यों जो सब जगत् [स्थावर] जड़ अप्राणी का और प्राणतः चेतनावाले जगत् का पति है ऐसा अर्थ स्वामी जी ने किया हैं क्या स्थावर वृक्ष नहीं है और इस लेख में क्या वृक्षों को जड़ अप्राणी नही कहा है जरूर ही कहा हैं।

जातिरप्राणि नाम् । अष्टकं पाणिनीयः ॥ अ० २।६॥

जाति १ अप्राणिनाम् ६-प्राणी वर्जित जातिवाची शब्दों का द्वन्द्व एक वचन हों।

माने जिसमें जीवात्मा नहीं होता है उसी को अप्राणी कहते हैं इसको कोई भी मिथ्या नहीं कर सकता। और श्रीमान् पं० गणपति शर्मा जी वा स्वामी मगलानन्द जी दोनों पुरुष अपनी चतुर्ता से वृक्षों को अप्राणी शब्द से बचाते हैं पर इनकी यह चालाकी वृथा ही है देखो अष्टाध्यायी में ॥

वा० अप्राणि जातेश्चा रज्वादीनामः।

स्त्रैण० । भाग० । वेदाङ्ग-प्रका ॥

अर्थ-स्त्री लिङ्ग में वर्तमान अप्राणी वाची जाति प्राति पदिक से उङ प्रत्यय होवे। परन्तु रज्व आदि प्राति पदिकों से न हो जैसे, अलाबुः। कर्कन्धूः। यहां अप्राणि ग्रहण इस लिये है, कि रज्वः। हनु इत्यादि से ङीष न हो। अब आप पंडित वा स्वामी मगलानन्द जी अप्राणि शब्द से वृक्ष को बचाय नहीं सकते क्योंकि कर्कन्धू वंडवेरी के पेड़ है और अलाबुः तुवी आदि की बेल का नाम हैं इसीसे वृक्ष अप्राणी अर्थात् निर्जीव सिद्ध होते है। अगर कोई इतने पर भी न समझे तो क्या किया जाय। लघुकौमदी के भाषाकार ने भी अलावु, कर्कन्धू जो तोंबे की बेल वा बेर वृक्ष है इन पेड़ों को अप्राणी ही लिखा हैं देख लेना इसी सूत्र के भाष्य में। जब सत्र ही वृक्षों को अप्राणी म नते हैं तो फिर बिचारे दयानन्द जी का क्या दोष है। और अप्राणी बिना जीववाले कहाते हैं। और जड़ भी उसी को कहते हैं जिसमें जीव नहीं हो।

ईसाइयों के खण्डन ७८ में श्री स्वामी जी जो वृक्ष जड़ पदार्थ है वृक्ष का अर्थ जड़ पदार्थ किया है। समझदारों ने इस लेख का भी किसी न किसी उलटी पुलटी रीति से खण्डन कर ही डाला। और भी देखो।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

स० प्र० पृ० १० में। सन् १८७५।

अर्थ–यह यजुर्वेद का वचन है जगत् नाम प्राणियों का जो कि चलते फिरते हैं तस्थुष अप्राणि नाम स्थावर जो कि पर्वत वृक्षादिक हैं। अब न्याय की दृष्टि से देखकर इस सब सिद्धान्त को लक्ष में धरकर सचाई का फैसला करके बेधड़क हो कर कहदे जो कहना हो सो तेरी आत्मा ने जैसा समझा हो उसी का प्रचार भी कर। अब देखो युक्ति स भी वृक्ष जीववाले नहीं सिद्ध होते हैं बहुत से वृक्षों में जीव मानने वाले यह कहा करते हैं कि वृक्ष में जीव सुषुप्ति अवस्था में है पर इनका यह कहना ठीक नहीं है। देखो जिसको सुषुप्ति होती है उसका शरीर सत्तहीन अर्थात् ढीला होकर उसके सब अंग लटक जाते हैं पर वृक्षों में ऐसा नहीं होता है इससे वादी की तर्क बेकाम है।

दूसरी बात यह कहा करते हैं कि जिसमें जीव नहीं होता है वह पदार्थ बाहर से बढ़ता है कि जैसे पत्थर के पहाड़ बिना जीव के हैं और बाहर से बढ़ते हैं पर इनकी यह भी तर्क बेकाम है क्योंकि पत्थर भी अन्दर से ही बढ़ते हैं देखो प्रत्यक्ष का खण्डन तो किसी सूरत से भी नहीं हो सकता पहाड़ों में शिला-जीत सब अन्दर से ही बढ़ता है इसी से इनके विज्ञान तत्व की

पोल झलकती है। जैसे पत्थर के अन्दर से शिलाजीत उत्पन्न होता है तो पत्थर को शिलाजीत पुत्रवत् हुआ जब किसी का पुत्र अन्दर से बढ़ता है तो यह जानो कि उसका पिता भी अन्दर ही से बढ़ा है और देखो जब दियासुलाई को घसीटते हैं तो चरर से होकर अन्दर ही से बढ़ता है।

देखो जल, अग्नि, वृक्ष तीनों समान ही जड़ है जब हवा मिलती है तो हिलते हैं कई हजार कोष लम्बा चौड़ा समुद्र है उसमें भी वायु के वेग से ही तरंग बनती है नहीं तो चुपकी साधे स्थिर रहता है ऐसा ही हाल दीपक का है जब वायु झोका मारता है तो दीप सिखा इधर उधर हिलता है नहीं तो सीधी सिखा रहती है यही हालत वृक्षों की भी है हवा से हिलते हैं नहीं तो बिचारे चुपचाप ही स्थिर खड़े रहते हैं। वायु जड़ होता हुआ भी गतिसिल है इन सब में हरकते इन्तजामी तो हैं परन्तु हरकतें इरादी नहीं है देखो इसमे प्रमाण भी है।

विशेषकार्येष्वपि जीवनाम् । सांख्य १।६७

विशेष क्रिया जाना फिर आना क्रिया इरादी ज्ञानवाली।

"व्यनतु अव्यनत्" अथर्व॰का॰५सू॰२मं॰२

अर्थ—स्थावर गति सुन और जङ्गम विविध गतिवाले हैं। ऐसा अर्थ है जब वृक्षों में गति भी पूर्व आर्य नहीं बताते तो फिर जीव का होना कैसे सम्भव हो सकता है।

प्रश्न—वृक्षों में गति नहीं है क्योंकि वह सुषुप्ति में है इसी से वृक्ष हिलते नहीं हैं [उत्तर] इन बातों से काम नहीं चलता देखो लजवन्ती घास छूने से मुच जाती है अगर निद्रा अवस्था में होती

तो छुई मुई घास में ऐसा परिवर्तन कभी नहीं हो सकता और कितने ही वृक्ष ऐसे हैं कि जिनके पत्ते रात्रि को बुच जाते हैं और प्रातःकाल में उनके पत्ते खुल जाते हैं। इससे यह सब आकर्षण शक्ति से लिला होती है जैसे चुम्बक पत्थर में आकर्षण से हरकते इन्तजामी हैं ईश्वर की शक्ति से हैं। जब थारा सुपत्ति का पक्ष व भीतर बाहर पढ़ने का पक्ष दोनों गिर गये तो फिर आपके पास रह क्या गया अर्थात् कुछ भी नहीं रहा हैं।

"योः विश्वस्य जयतः प्राणतस्पतिः। ऋ० १६६।२

यह मन्त्र श्री स्वामी दर्शनानन्द जी ने पं० गणपति शर्माजीके सास्त्रार्थ में [पेश] किया था किन्तु पं० जो से [उत्तर] नहीं बना

(प्रश्न) हम पहाड़, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, तारे जल, अग्नि, वायु इन सबमें अभिमानी जीवात्मा नहीं मानते क्योंकि इन सबके लिये वेद में नहीं आया और हम वृक्षों में अभिमानी जीव मानते है क्योंकि वृक्षों के लिये वेद में आया है देखो। "येन प्राणन्ति वीरुध" यह आया है (उत्तर) यह समान प्राण से तात्पर्य हैं विशेष से नहीं है (प्रश्न) समान व विशेष किसको कहते हैं [उत्तर] ईश्वर की दी हरकतें इन्तजामी को समान कहते हैं और जहां ईश्वर वा जीवात्मा दोनों की क्रिया होती है उसे विशेष कहते हैं तात्पर्य यह है कि एक क्रिया ईश्वर की दूसरी जीव की मिलने से विशेष माने घणी हो गई और वृक्ष में जीव न होने से हरकते इन्तजामी है और देखो सूर्य पृथिवी आदि के बारे में।

यः प्राणेन द्यावा पृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति। तस्य।

भावार्थ–[यः] जो [प्राणेन] प्राण से [द्यावा पृथिवी] सूर्य और भूमि को तर्पयति] तृप्त करता है और [यः] जो [अपानेन] अपान वायु से [समद्रस्य] समद्र के [जठरम्] पेट को [पिपर्ति] भरता हैं [तस्म] उस ईश्वर ने। तात्पर्य यह है कि उस परमेश्वर ने भूमि वा सूर्य को भी [प्राण] के सहित बनाया है और समुद्र में नीचे जल के अन्दर एक ऐसा वायु रचा है कि वह वायु समुद्र के जलको दोपहर के अरसे में उस समुद्र जल को पांच हाथ ऊंचा बढ़ा देता है फिर उस जल को दोपहर में पांच हाथ नीचे बैठा वा घटा देता है। यह परमात्मा की इन्तजामी हरकतों से होता है देखो यह समुद्र जल अन्दर से ही बढ़ता है और बिना जीववाला जड़ पदार्थ है जैसे अग्नि वायु जल मिलकर वृक्षों को बढ़ाते हैं ऐसे ही घी आदि सामग्री और काष्ठादि ईंधन यह सब अग्नि को बढ़ाते हैं ऐसे ही प्राकृतिक पदार्थ मिल जुलकर रूपान्तर भेद से एक दूसरे को बढ़ाते हैं इसमें निमित्त कारण ईश्वर है।

(प्रश्न)–तुम भूमि व सूर्य में भी (प्राण) सिद्ध करते हो तो यह क्या जुल्म ढाते हो। क्योंकि पं० गणपति शर्मा जी ने अपने शास्त्रार्थ में यह सिद्ध किया था कि बिना जीव के पदार्थ में प्राण नहीं होते हैं। देखो इनके शास्त्रार्थ पृ० २१ पंक्ति ५ वा ११ में पंडित जी बिना जीव के प्राण नहीं होता हैं। और भी देखिये दिखाता हूं।

प्राणे नग्निस सृजति वातः प्राणेन संहितः।
प्राणेना विश्तो मुखं सूर्यदेवा अजनयन :॥

अथर्व० का० ११ सू० २७। मं० ७

भावार्थ–वह (परमात्मा) [प्राणेन] प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ [अग्निम्] अग्नि को [संसृजति] संयुक्त करता है। [वातः] वायु [प्राणेन] प्राण [जीवन सामर्थ्य] के साथ [विश्तो मुखम्] सब ओर मुखवाले [सूर्यम्] सूर्य को [देवाः] दिव्य नियमों ने [अजनयन् उत्पन्न किया हैं।

अब कहिये पं गणपति जी की बात मानी जाय कि वेद के असूल को माना जाय पं० जी मौज मारते थे इश्वर की उधर गप मारकर मजा उड़ाते थे जिस किसी की दुकान जम जाती है तो वह फिर स्वाध्याय नहीं करते और बिना स्वाध्याय किये बहुत बातों की कमी रह जाती है फिर उस कमी की पूर्ती के लिये मिथ्या भाषण से ही काम लेते हैं जब कोई दूसरा उनसे अटपटा प्रश्न कर देता है तो यह कहते हैं कि तुम तो किसी की इज्जत नहीं करते हो। ऐसा कहकर अपनी कहाते हैं।

मगलानन्द समीक्षण।

श्री स्वामी मगलानन्द जी को अमगला व उलटानन्द भी कहा जाय तो अयोग्य न होगा।

वृक्ष में जीव है इस नाम की पुस्तक में (विषय सूची १ खंड तर्कवाद पृष्ठ १ में कुछ आरम्भिक बातें १० में पौधों की किस्में १७ में मासाहारी बौद्धों की किस्में [उत्तर] वृक्ष में प्रीति नहीं है और जो माँसाहारी होता है उसकी मांस में प्रीति होती है २६ [प्र०] पौधा कहे या जन्तु उ०) [जन्तु] तो प्रीतिवाले जीवधारी हैं और वृक्ष प्रीतिहीन होने से जड़ बिना जीव का है ऐसे तो दीपक को भी तेल व चर्बीहारी कह सकते हैं (३४ प्र०) वृक्ष की

अन्य जन्तुओं से समानता (उ०) जन्तु दौड़ते बोलते हैं व प्रीति सहित हैं इससे जीवधारी हैं वृक्षों में यह गुण न होने से वह निर्जीव ही है (३७ प्र०) वृक्ष सांस लेता है [उ०] इसके लिये देखो य० वेद० अ० २५ मं० ११ दया० भाष्य वृक्ष साँस लेनेवालों में शुमार नहीं है य० अ० २५।११ [प्राणतो निमिषतो| अर्थ प्राणतः श्वास लेने वाले प्राणी और (निमिषतः) चेष्टा कृत स्थावर वृक्षादि हैं पृ० (४४) में (प्र०) देखता सुनता सूंघता है। (उ०) वृक्ष के आंख कान नाक किस स्थूल पे हैं यह बताइये वृक्ष प्रीति हीन है जो खाता है वह प्रीति सहित होता है वृक्ष दिवे की लोवत् पानी चूसता है। (६१) (पृ०) वृक्ष सोता है (उ०) सोनेवाले का शरीर बल हीन हो जाता है सब अङ्ग ढीले पड़ कर लटक जाते है। वृक्ष की दशा ऐसी नहीं है और सोने वाले की भी सोने में प्रीति होती है। वृक्ष प्रत्यक्ष में प्रीति सुन होने से जड़ है। (६६) (पृ०) वृक्ष नाड़ी और गति रखता है। (उ०) गौण रीति से तो हरकतें इन्तजामी सब ही जड़ पदार्थों में हैं जैसे चुम्बकमणि और पत्थर के पहाड़ में सिलाजीत आदि पैदा होते हैं परन्तु मुख्य बतावर से स्थावरों में गति नहीं है। (व्यनतु अव्यनतु) अथर्व० ५। २। २ अर्था (व्यनतु) जंगम सब गति शील है [अव्यनतु] स्थावर सब गति शून्य है जब वेद वृक्ष में गति नहीं मानता तो उलटा नन्द जी की बताई हुई गति कौन मान लेगा। [पृ० ७१] में वृक्ष रोगी होता है। (उ०) रोगी जड़ चेतन दोनों होते हैं जैसा कि आम आदि के अचार में भी रोग होता है स्वयं टूटे

वृक्ष फलों में रोग होता है जिनको आप जड़ मानते हैं अन्न के बीज रोगी होते हैं जो अन्न (खम) खा जाता है वह जामता नहीं वा सुर्शरी रोग अन्न में और लकड़ी में घुण रोग वा लोहे में मुरचा, जंग जर आदि रोग होते हे । यह रोग सब गौण है चेतन जीवधारी रोग से छुटने की इच्छा और प्रयत्न करता है जड़ वृक्ष व लोह आदि रोग से छुटना नहीं चाहते हैं पृ० ७५ नर मादा होता है सन्तान छोड़ना और रिश्ना नाना रखता है वृक्ष (उ०) सब मिथ्या बातें हैं जिस किसी के सन्तान होती है तो वह जीवधारी होने से अपने सन्तान की रक्षा भी करता है. वृक्ष जड़ पदार्थ होने से उसमें रक्षा करना आदि गुण नहीं हैं क्योंकि पंछी वर्ग वृक्षों के फलों को अधकटे करदेते हैं और पत्तों पे बीटवा टट्टी के ढेर से भ्रष्ट कर देते हैं ऐसी सन्तान तो जड़ पदार्थों में होती है। देखो भूमि में धातु, पर्वत मे शिलाजीत, दीपकमें प्रकाश, कोयले वा बर्फ में हीरा आदि उत्पन्न होते हैं जड़ पदार्थों की सन्तान से चेतन लाभ उठाते हैं यह भी एक जड़ की पहचान है। और आप जो यह कहते हैं कि वृक्ष [नाता] रखता है यह तो सर्वोपरि मिथ्या बात है क्योंकि नातेदारी रखने का ज्ञान तो भलीभांति पशुओं में भी नहीं है परन्तु थोड़े से दिनों तक सन्तान को माता का ध्यानमें और माता को बच्चों का ज्ञान तो होता भी है पशुवर्ग में पिता का ज्ञान तो किसी को भी नहीं है फिर जड़ वृक्ष को नाते का ज्ञान कैसे हो सकता है। [पृ०] वृक्ष ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न रखता है सुखी दुखी होता है शत्रु से अपनी रक्षा करता है? [उ०] वृक्ष में

प्रीति के न होने से यह सब गुण नहीं हैं । वृक्षः । कृत्सम् । उणादि कोष पृ० ७३ सू० ६६ पद ३ ।

दया० भाष । वृक्षः कृत्सम् । अर्थ वृक्ष जाति प्रीति हीनों था ऐसा लेख है इसमें मगलानन्द उलटा हैं ।

[प्रश्न] वृक्षों के लिये इतना परिश्रम किस लिये किया जाय क्योंकि वृक्षों में जीव हो तो अच्छा और न हो तो उससे भी अच्छा है । वृक्ष में जीव की ढूंढ भाल करना फजूल हैं । [उत्तर] फ़जूल नहीं है देखो:—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

मनु० ॥५।१०६ ॥

जल से बाहर के अङ्ग, सत्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती हैं । भीतर राग द्वेषादि दोष और बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्यासत्य के विवेकपूर्वक सत्य के ग्रहण असत्य के त्याग से निश्चय पवित्र होता हैं । [क्षान्ति] अर्थात् निन्दा स्तुति सुख दुख शीतोष्ण क्षुधा तृषा हानि लाभ मानापमान आदि हर्ष शोक को छोड़ के धर्म में दृढ़ निश्चय रहना [आर्जव] कोमलता निरभिमान सरलता सरलस्वभाव रखना कुटिलतादि दोष छोड़ देना [ज्ञान] सब वेदादि शास्त्रों को अङ्गोपाङ्ग पढ़के पढ़ाने का सामर्थ्य विवेक सत्य का निर्णय जो वस्तु जैसा हो अर्थात् जड़ को जड़ चेतन को चेतन जानना और

मानना [विज्ञान] पृथवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे यथायोग्य उपयोग लेना । [आस्तक्य] कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व जन्म, धर्म विद्या, सत्सङ्ग, माता पिता आचार्य अतिथियों की सेवा को न छोडना और निन्दा कभो न करना ॥२॥ ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मध वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहिये ।

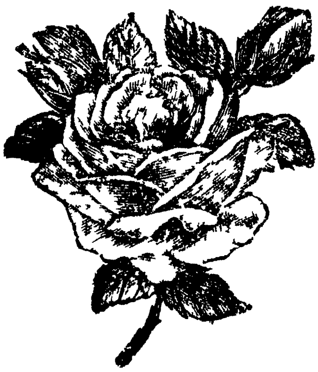
स० प्र० पृ० ६० मे देखो ॥

श्रीमान् ला० शम्भूदयाल जी आर्य पुत्र ईश्वर इनकी सदा सहाय करता रहे यह मेरा धन्यवाद है । लालाजी से मुझे पुस्तक में सहायता बहुत करके मिली है और मेरा धीरज भी बंधाते रहे हैं । ला० शम्भूदयाल जी, सदरबाजार, देहली ।

॥ इति वृक्षजीव मीमांसा दर्शन की भूमिका ॥

विक्रमी संवत १६८५ ॥ आषाढ़ शुदी २ ॥

गरीब रामजीलाल जाट



॥ ओ३म् ॥

* ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप को नमोनमः *

वृक्षजीव मीमांसा दर्शन ।

प्रथम भाग

प्रथम लहर

"वृक्ष वृत्सम्" उणा० ३ । ६६ ॥ अर्थ-वृक्ष जाति प्रीति होनो वा। टिप्पणी-इच्छा, राग द्वेष, प्रयत्न सुख दुख यह छः लक्षण प्रीति के विना होते ही नहीं है । और सब को जाने देते भी जीवधारी भोजन पर तो प्रीति जरूर ही करेगा। सो प्रीतिहीन होने से वृक्ष निर्जीव है (प्रश्न) पागल मनुष्य में प्रीति नहीं होती क्या उसमें जीव नहीं है [उत्तर] मेरा विचार किसी रोगी के लिये नहीं हैं किन्तु प्रसिद्ध दशा वाले पर हैं और न मेरा विचार किसी एक व्यक्ति पर ही है परन्तु मेरा विचार तो एक जाति विशेष पर है कोई जाति ऐसी बताइये कि जिस में जीव तो हो और प्रीति न हो। तब दाल गलेगी नहीं तो नहीं और जो आप कहते हैं कि पागल मनुष्य में प्रीति नहीं होती है । यह आपका कहना ठोक नहीं है क्योंकि पागल तो बड़े प्रीति के साथ खाते हैं।

चर किसको कहते हैं और अचर किसको कहते हैं इसको निर्णय।

सं० प्र० पृ० १७

जो सब [चराचर] जगत् को देखता चिन्हित अर्थात दृश्य

बनाना जैसे शरीर के नेत्र नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूलादि चिन्ह करने से ईश्वर का नाम लक्षणा है ! समझत करलो कि वृक्ष अचर है। अचर उसको कहते हैं कि जो खाता नहीं है। और चलता भी नहीं है। ऐसा निश्चय होता है। इस लेख से कि चलने वाले ही जीव हैं।

जङ्गम वा स्थावर किसको कहते हैं इस पे विचार

जो सूर्य न हो तो स्थावर वृक्ष आदि और जङ्गम मनुष्यादि जगत् अपना २ काम देने को समर्थ न हों। इस लेख को पढ़कर समझत कर लो कि वृक्ष स्थावर है। यजुर्वेद अ० २५। ११॥

जड़ किसको कहते हैं इस पे विचार।

पृथ्वी आदि जड़ जीव सम्बन्ध से रहित जगत् जो भोजन के लिये बना है क्यो कि उसमें ज्ञान ही नही है और न अपने आप चेष्टा भी नहीं कर सकता है परन्तु उस परमेश्वर की दी हुई शक्ति से वृक्ष में फल फूल और भूमि में रत्न आदि की खानादि होती हैं। यह दोनों भाषो का सार मैंने मिलाकर लिखा है वह ऐसा ही लेख है, देख लेना, इससे वृक्ष जड़ वा जीव सम्बन्ध से रहित सिद्ध होते हैं ऋ० वेदादिभाष्य भूमिका पृ० १२२ में और चर प्राणिमात्र, यह वाक्य यजुर्वेद अ० ४० म० १ के भाष्यमें है।

टि०—मात्र शब्द यह सिद्ध करता है कि चरही जीव है और अचर जीव नहीं है किन्तु जड़ है।

यो विश्वस्य जगत् प्राणतस्पति ऋ० म० १ सू० १०१ म० ५।

[illegible] | सम [illegible] [illegible] [illegible] कहा जाता है [illegible] जङ्गम [illegible] का [illegible]
जंगमरूप [प्राणतः] जीवते जीव समूह का पति

१८०–देखो जङ्गम ही सब जीव बनाये हैं और समूह शब्द का अर्थ है कि सब जीव–

ऊर्ध्वोश्विरथाय जीवसे ॥ यह वाक्य आर्याभिविनय भाग १ म० १६ । का है।

अर्थ–हे ईश्वर [चर जीव से] सब चलने वालों में मुझे ऊंचा कर विद्या आदि गुणों में, इस लेख से भी चलने वाले ही जीव हैं ऐसा जाना जाता है ।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः। अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः स० प्र० पृ० २३१ ॥

इसको समझदार हमेशा पढ़ते हैं पर आज तक मर्म को नहीं जाना है आकाश से लेकर रेतसः पद तक सब जड़ पदार्थ है और एकसे एक उत्पन्न होता चला आया है आगे जब रेतसःसे पुरुष जो शरीर है उस शरीर में जीव का संयोग किया है। जैसे भूमी पैदा हुई है ऐसे ही वृक्ष और ऐसे ही रेत वा वीर्य भी। शरीरों में जा कर जीवों का संयोजन किया है देखो [१] वृक्ष से [२] अन्न अन्न से [३] वीर्य्य वृक्षों की तीन २ पीढ़ी बीत कर शरीर चौथा पैदा

हुआ है वृक्ष पिता, अन्न पुत्र, और वीर्य परपौत्र, सिद्ध होता है।

अर्थ-यहतैतिरीय उपनिषद् का वचन है उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश, आकाश के पश्चात वायु, वायु के पश्चात अग्नि, अग्नि के पश्चात जल, जल के पश्चात पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष अर्थात शरीर उत्पन्न होता है। स० प्र० पृ० २३१ ॥ भला ऐसा कौन समझदार है जो इस लेख के होते हुये भी वृक्षों में अभिमानी जीव का निश्चय करे क्यों कि भूमि से वृक्ष, वृक्ष से अन्न, अन्न से वीर्य यहां तक सब जड पदार्थ है वीर्य को पं० गणपति शर्मा जी ने भी जड़ ही माना था अपने शास्त्रार्थ में।

अब पृ० २३३ के लेख को भी देखिये। क्रम से पांच स्थूल भूत जिनको हम लोग प्रत्यक्ष देखते है उत्पन्न होते हैं। और उनसे नाना प्रकार की ओषधियां, वृक्ष आदि उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता हैं। परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बनाकर उन में जीवों का संयोग कर देता हैं तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।

अब स्वामी जी प्रथम चेतन जीव वाली सृष्टि का वर्णन करते हैं।

देखो-शरीरमें किस प्रकारकी ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़ नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढक्कन, प्लीहा, यकृत्, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, [जीव का संयोजन] शिरोरूप मूल रचना, लोम नखादि का स्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिये स्थान

विशेष का निर्माण, सब धातु का विभाग करण, कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को विना परमेश्वर के कौन कर सकता है यह जीव धारियों की सृष्टि बनाई है। अब आगे विना जीव की जड़ सृष्टि का वर्णन है। जो ऊपर के लेख में जीव की जागृत स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्था का भोग करना और जीव का शरीर में संयोग होना बताया है सो नीचे के लेख में नहीं मिलता इस से नीचे जड़ विना जीव वाली सृष्टि है ऐसा जानो।

इसके विना नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमी, विविध प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों मे अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत. कृष्ण, चित्र मध्य रूपों से युक्त पत्र, पुष्प, फल, मूल निर्माण, मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस सुगन्धादि युक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि, रचना॥ अब बतावे आप इसमें वृक्ष की हालत का वर्णन है कहीं जीव का जिकर तक भी नहीं है। इससे वृक्ष निर्जीव सिद्ध होते हैं। देखो कहाँ यह वेद मन्त्र—"व्यनतु अव्यनतु" अर्थ जंगम गति शील और स्थावर वृक्षादि गति शून्य है और कहां कपिल मुनि का कथन "विशेषकार्य्योष्वपि जीवानाम्" अर्थ-जिसमें विशेष गति हो सो ही जीव है महर्षि कपिल जी का यही आशय है कि विशेष जाना आना फिर आना इसको विशेष गति कहते हैं। श्री स्वामी जी का वृक्ष जीव विषे मन्तव्य अधार मन्त्र यह है।

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देवआदिद् गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः। तृतीयः पिता जनतौषधीनामपांगभ व्यधात्पुरुत्रा।

पदार्थ=(विश्वकर्मा) विश्वानि सर्वाणि शुभानि कर्मानि यस्य सः (हि) खलु अजनिष्ट) जनितवान (देवः) दिव्य स्वरूपः (आतु) (इत् गन्धर्वः) गां पृथिवी धरति स सूर्यः सूत्रात्मा वायुर्वा (अभुवत्) भवति (द्वितीय) इयों संख्यापुरको धनञ्जयः (तृतीयः) त्रयाणां संख्यापूरकः प्राणादिस्वरूपः (पिता) पालकः (जनिता) प्रसिद्धिकर्त्ता उत्पादकर्ता पर्जन्य (औषधीनाम) यवादीनाम् (अपाम्) जलाना प्राणानां वा (गर्भम्) धारणम् (वि) (अदधातु] दधाति [पुरुत्रा] यः पुरून बहुन् त्रायते सः ॥३२

भावार्थ-सर्वैर्मनुष्यैरिह सकल कर्म सेवक जीवाः प्रथमाः विद्युदग्निः सूर्यवायवः । पृथव्यादिधारका द्वितीयास्तृतीयाः पर्जन्यादयस्तेषां जीवा अजाश्चन्ये सर्व जतास्तेऽपि कारण रूपेण नित्यश्चति वेद्यम् ॥३२॥

पदार्थः-हे मनुष्यो इस जगत् में [विश्वकर्मा] जिसके समस्त शुभ काम हैं वह [देवः दिव्यस्वरूप वायु प्रथम [इत्] ही [अभवत्] होता है | आत् इसके अनन्तर [गन्धर्वः जो पृथिवी को धारण करता है वह सूर्य वा सूत्रात्मा वायु [अजनिष्ट] उत्पन्न और [ओषधीनाम्] यव आदि औषधियो [अपाम्] जलो और प्राणों का [पिता पालन] करनेहारा [हि] हो [द्वितायः] दूसरा अर्थात् धनञ्जय तथा जो प्राणों के [गर्भ] अर्थात् धारण को [व्यदधात्] विधान करता है वह [पुरुत्रा] बहुतों का रक्षक [जनिता] जलों का धारण करनेहारा मेघ [तृतीयः] तीसरा उत्पन्न होना है इस विषय को आप लोग जानें ।

भावार्थ-सब मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में सब कामों के सेवन करनेहारे [जीव] पहिले विजली, अग्नि वायु और

सूर्य पृथिवी आदि लोकों का धारण करनेवाला है वे दूसरे और मेघ आदि तीसरे हैं उनमें पहिले तीव्र अज्ञ अर्थात उत्पन्न नहीं होते और दूसरे तीसरे उत्पन्न हुए हैं ऐसा जाने ॥३२॥

[प्रश्न] इस लेख मे वृक्ष शब्द नही आया परन्तु पृथवी आदि शब्द आया है। इससे वृक्ष का ग्रहण नहीं होता है। [उत्तर] वाह जी समझदार देखो मूल मंत्र में औषधी शब्द हैं और औषधि के अर्थ वृक्ष समूह के हैं जो पीड़ा को मिटावे वह औषधि जितने वृक्षों में खाने के योग्य फल हैं वह सब औषधि-याची हैं देखो भूमि से औषधि वृक्षादि उनसे अन्न, अन्न से वीर्य ऐसा अर्थ होता हैं। और जब जब जड़ चेतन के निर्णय का प्रसंग आता हैं तब २ पृथिवी आदि बेल पर्वत एक अर्थ में रहते हैं। देखो जैसे 'यदन्नेनातिरोहति' अर्थ–पृथिव्यादिना जगता सहा तिरोहित॥ संस्कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ०१२०+१२१ अर्थ–[अन्न] अर्थात् पृथिव्यादि जगत् के साथ व्यापक होके स्थित हैं। देख यह अन्न का अर्थ पृथिवी किया है और अन्न वृक्ष एक ही हैं। और देखो तथा कार्य और कारण रूप को भी पृथिवी शब्द से लेते हैं और देखो वृक्षों का नाम कार्य भी हैं। भ्रन्ति निवारण ॥पृ० १५॥

छद्यत्वत कार्यं जगदपि वृक्ष उच्यते। उ०३।६६

सभृतं प्रषदा ज्यम् पशुस्ताश्चक्रे ।

अर्थ–(संभृत पृषदा ज्यमु) सब भोजन, वस्त्र, अन्न, जल, आदि पदार्थ ईश्वर ने उत्पन्न किये हैं। (पशुस्ता श्चक्रे) पशु शब्द का अर्थ मनुष्य से लेकर कीट तक होता है ग्राम और वन के

सब पशुओंको भी उसी ने उत्पन्न किया है। तथा सब पक्षियों को भी बनाया है और भी सूक्ष्म देहधारी कीट पतङ्ग आदि सब जीवों के देह भी उसी ने उत्पन्न किये हैं देखो समझदारो इस भाष्य में सब जीवों की उत्पत्ती से वृक्षों की उत्पत्ती जुदी है और भी देखिये दिखाता हूं। जड़ वृक्षादि और चेतन मनुष्यादिहैं।

अद्भ्यः संभूत पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः॥
तन्मर्त्यस्य देवत्व॥ १७।

देखो इन लेखों को तो एक बालक भी समझ लेता है कि वृक्ष और जीव वाले जुदे २ हैं।

(अद्भ्यः संभूतः) भूमि वृक्ष अग्नि जल वायु आकाश प्रकृति से लेके घास पर्यन्त जगत् को रचा है।

(तन्मर्त्यस्य देवत्व) जब परमेश्वर ने मनुष्य शरीर आदि को रचा है देखो वृक्ष जड़ पदार्थों में शुमार हैं उपदेशक या वृक्ष में जीव है ऐसी पुस्तक रचिये लोगों का तो यह हिसाब है कि 'पढ़े न सढ़े दूध पिवे कढ़े' अर्थात गर्म दूध बहुत लाल हुये को कढ़ा कहते हैं।

यह तीनों प्रमाण ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के हैं। पुरुष सू० म० २। ६। १७। पृ० १२० में॥

जीव-वृक्ष मीमांशादर्शन–इति प्रथम लहर।१। दूसरी लहर प्रारम्भ।२

अथर्व० काण्ड ३॥सूक्तम् १०॥

रात्रिरेकाष्टका वा देवता।पुष्टि बढ़ाने के लिये। प्रकृति का वर्णन।

भावार्थ–इस सूक्त में (रात्रि) म० २ और (एकाष्टका) म० ५, दोनों शब्द प्रकृति के वाचक हैं। प्रकृति ईश्वर शक्ति वा जगत

की सामग्री, सृष्टि से पहिले विद्यमान थी उसने ईश्वर नियम से (मन्त्र २ व ८ देखो) विविध पदार्थ सूर्य अन्नादि उत्पन्न किये हैं यह पहिले मन्त्र का भाष्य है [एकाष्ट के] म० ५ है अकेली व्याप्ति वाली वा अकेली भोजन स्थान शक्ति [प्रकृति] देखो इसमें यह विचारना चाहिये कि जैसे कारण रूप [प्रकृति] विना जीव के एक है । ऐसे ही भोजन स्थान जो वृक्ष लता बेल आदि है वह भी विना जीव के एक हो है।

यद्वा अश्नन्ति सर्व प्राणिनो यस्यां सा अष्टका । एका चासावष्टका एकाष्टका । हे एक मात्र व्यापनशीले । एकमात्र भोजन स्थाने प्रकृते ।

ऐसा लेख है, प्राणियों की आम खुराक वृक्ष ही है । एकाष्टके नाम से निर्जीव सिद्ध किया है वेद ने ॥ अथर्ववेद पृ० ४५४ ॥

आयमगन्त्संवत्सरः पतिरेकाष्टके तव । सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज ।

भावार्थ-[एकाष्टके] अकेली व्यापक रहने वाली वा अकेली भोजन स्थान शक्ति [प्रकृति] [अयम्] यह [संवत्सर] यथावत् निश्वास देने वाला [तव] तेरा [पति] पति वा रक्षक [परमेश्वर] [आ अगन्] प्राप्त हुआ है [सा] लक्ष्मी तू [नः] हमारे लिये [आयुष्मती] बड़ी आयु वाली [प्रजाम्] प्रजा को [रायः] धन की [पोषेण] बढ़ती के साथ [संसृज] संयुक्त कर । भाषकर्ता ने यह बताया है कि म० ८ में अन्न वृक्ष उत्पन्न किये हैं । और पोषण करने वाले प्रकृति वृक्ष ही हो सकते हैं ।

[एकाष्टका] भोजन स्थान अकेली भोजनवाली फलोंवाली एक है जीव के विना फलवाली वृक्षादि बेल, श्री स्वामी दयानन्द जी ने ककन्धु अलाबु को अप्राणि लिखा है जो कि बेर वृक्ष और तूंबी आदि की बेल है। फिर वृक्षों के निर्जीव होने में क्या शङ्का है। और लघु कौमदी में भी इन दोनों वृक्षों को अप्राणि ही लिखा है फिर जीव की चिल्लाहट वृक्षों के लिये हक नाहाक क्यों मचाई जा रही है।

[एकाष्टके] तुझको ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों के लिये। तात्पर्य ऋतुओं में फूल फल से तृप्ति करती है म० १०।

[एकाष्टका] म० १२ [एकाअष्टका] अकेली व्यापक रहने वाली वा अकेली भोजन स्थान शक्ति [प्रकृति] तात्पर्य एक है फलोंवाली विना जीव के वृक्ष निर्जीव ही हैं। मन्त्र १२ में प्रकृति के तीन भागों का वर्णन है एक कारण रूप+दूसरी फलों वाली+तीसरी गर्भ शब्द से जीवों को उत्पन्न करने वाली। कोई यह शङ्का करे कि [एकाअष्टका] पद से वृक्ष आदि की उत्पत्ती नहीं सिद्ध होती है तो देखो—

इष्यशिभ्यां तकन् ॥ १४८ ॥ इष्टका। अष्टका ॥१४८॥ उ०३। १४८

[१४८] इष्यतेऽसाविष्टका। अश्नुते सा अष्टका। वैदिक कर्मविशेषो वा। बाहुल कात्-मस्यति परिणमतीति मस्तकम् शिरो वा॥ तात्पर्य वेद में बहु बचन से और भी अर्थ होते हैं।

टिप्पणी—[परिणमतीति] परणमी बढ़ने वाली [मस्तकम्] गांठों में से बढ़ने वाली [शिरो वा] शिर फुनंगी जो ऊपर को हरी २ बढ़ती है। अगर जो कोई इतने पर भी शंका करे तो फिर देखो।

उसी धातु का अर्थ है । [१५७] [इष्यते] न इक्षु मधु तृण वा ॥ अर्थ ईख जुवारादि के मीठे वृक्ष जो हो उनको मधु तृण कहते हैं। [१४८ इष्यतेऽस] [१०७ इष्यतेस] दोनामे एक ही धातु है। उ० ३। १५७॥

अब कोई भी शंका वृक्षों के निर्जीव सिद्ध होने मे नहीं रही है आर्य ग्रन्थों के अनुसार।

इति दूसरी लहर॥

तीसरी लहर आरम्भ ३।

सोदकामतुः सा. वनस्पति ना गच्छतु। अथर्व० का० ८ सू० १० पर्या ३ म० १।

सोद नाम ईश्वर का है उसी का करामात से वृक्षादि बेल हरे रहते हैं ऐसा जानो। इसका अर्थ तो मूल मन्त्र में ही स्पष्ट है न्यून से न्यून बुद्धि वाले को भी समझ में आजाना चाहिये। पदार्थ वृक्षादि वनिस्पतियों का प्रादुर्भाव ईश्वर शक्ति से होता हैं प्रादुर्भाव के अर्थ हैं॥ जाहिर होने के और इससे वृक्ष निर्जीव भूमि का एक अङ्ग हैं अगर इतने पर भी कोई न समझे तो अपनी बुद्धि को सान पर देवे। बुद्धिमान को चाहिये कि विचार से काम लेवे अंधाधुन्ध काम न करे।

देखो जीवधारी शरीर का शिर काटने से वह जी नहीं सकता जीव उन्हीं शरीरों में होता है कि जिन शरीरो में वाकायदे मुंह नाक आदि साँस लेने के लिये हो जैसे एक आग के चिंगारे को तोड़कर दो जगह सुलगा लेते हैं ऐसे ही एक वृक्ष की टहनी को तोड़कर दो वृक्ष बना लेते हैं यह लक्षण जड़ बिना जीववा ले

निर्जीव पदार्थों के हैं सजीव पदार्थ के नहीं हैं । देखो -

वनस्पतिनं संमत्सरः वृवणामतिः । मं० २

अर्थ-वृक्षादि वनस्पतियां खण्डित अशवाली हैं माने वेद कहता है कि वृक्षों के खण्ड २ हो जाते हैं इसीसे तो श्रीमान बोस जी उल्टा खिचते हैं क्योंकि वृक्षों में असली जीव बताकर प्रजा पर नकली रंग चढ़ा रहे हैं पर वह रंग आर्य्यों पर नहीं चढ़ता है क्योंकि आर्य असली रंग से रंगे हुए हैं । "खट २ चोट सुनार की तो एक ही चोट लुहार की" बोस जी की सब युक्तियों पर हमारी एक ही युक्ति काफी है जैसे कि जितने भी वृक्ष व पेड़ हैं उन सब को आरे से चीर कर जड सहित दो दो करदे तो भी पेड़ अपनी असली हालत में रहेंगे और फूल फल भी देते रहेंगे पर किसी जीवधारी का शरीर चार दिया जाए तो जीवित नहीं रह सकता, जैसे राजा जरासन्ध श्रीमान् भीम पाण्डव के चीर देने से मर गया था और बोस जी का माना हुआ ३ रत्ती उजनवाला(जीव)बड़ पीपल के महीन बीज में नहीं समा सकता है और न मच्छर के शरीर में जा सकता हैं ।

इति तीसरी लहर ॥

चौथी लहर आरम्भ ।

क्या जिसमें अभिमानी जीवात्मा हो उसको काटकर खाना चाहिये ना कभी नहीं देखो वेद में उपदेश ।

दृते दृᳪहमा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि

भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

य० वेद अ० ३६ मं० १८

पदार्थ-हे [दृते] अविद्या रूपी अन्धकार निवारक जगदीश्वर वा विद्वान् जिससे (सर्वाणि) सब [भूतानि] प्राणी [मित्रस्य] मित्र को [चक्षुषा] दृष्टि से [मा] मुझको [सम्] [ईक्षन्ताम्] सम्यक् देख [अहम्, मैं [मित्रस्य] मित्र की [चक्षुषा] दृष्टि से [सर्वाणि] [भूतानि सब प्राणियों को । समीक्षे , सम्यक् देखूं इस प्रकार हम सब लोग परस्पर (मित्रस्य मित्र की दृष्टि से, समीक्षमहे | देखें इस विषय में हम को [दृंह] दृढ़ कीजिये।

भावार्थ-वे ही धर्मात्मा जन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों को माने किसी से भी द्वेष न करें और मित्र के सदृश सब का सदा सत्कार करें।

टि०-इस मन्त्र के ये आशय हैं कि बे अपराध किसी भी जीव का मन मारो अगर वृक्ष भी गौ भैंस बकरी के सदृश ही जान-दार है तो गाजर, मूली, आलू, बेंगनादि सबजी अगर जीवधारी हों तो उनका खाना महापाप है क्योंकि जीव की दशामें तबूंज बकरी से कम नहीं, खर्बूजा मुर्गे से कम नहीं ककड़ी मछलियों से कम नहीं हैं और ईख के गन्ने सांपों से कम नहीं हो सकते। अगर एक समान जीवात्मा हो तब देखो ईख बिचारे का लोहे के कोल्हू में बेदरद हो कर उसके जिस्म का रस ऐसी बुरी हालत से निकाला जाता है कि इन सब का खाना त्याग देने योग्य है। औरों पर दोष बता कर आप उस ही काम को करता रहे यह कितनी निकृष्ट बात है।

अगर वृक्ष में भी जीव होता तो उसके इन्द्रिय क्यों नहीं जब

जूं, कीड़ा या सूक्ष्म से सूक्ष्म मच्छरों के भी आंख, नाक, मुंहादि ईश्वर ने रचे हैं तो इनमें वहीं वृक्ष में इन्द्रियों का अभाव क्या है और वह वृक्ष अपने देह को क्या नहीं हलाता डुलाता है या खुजली आदि कर्म करके अपने जीव मात्र को क्यों नहीं दर्शाता है क्योंकि जीवधारी इन्द्रियों वाले होते हैं वे इन्द्रियां नहीं अगर वृक्षों में जीव होता तो परमात्मा में कई दोष आवेंगे क्या ईश्वर से शुद्ध भोजन नहीं बनता बिना जीव का क्या ईश्वरने इस बात पे विचार ही नहीं किया कि शुद्ध या पवित्र मनुष्य योनि के लिये कोई शुद्ध भोजन तयार करें। यह कोई बनावटी ईश्वर तो है ही नहीं कि भूल जाय जैसे खुदा से भूल हो गई थी जब खुदा ने सृष्टि रची तो ऐसी भूल हुई कि आग बहुत गरम हदसे जादा गरम बनगई जिससे वह आग सात समुद्रों में धोकर ठीक करी और भूल कर चांद सूरज दोनों एक से गरम वा बराबर का तेज हो गया था तो फिर जबराइल फरिश्ते ने चांद को अपने पर मसल कर ठण्डा किया है और तीसरी भूल या जो आंख से देख रहे हैं वह यह कि भूलकर इन्द्रियों पर खलड़ी ज्यादा लग गई जो मुसलमानों को काटनी पड़ती है खुदा की भूल दुखदाई हो गई है भाई। अगर जो वृक्षों में भी जीव पशुओं के सदृश हो तो फिर खुदा में और ईश्वर में कोई भेद ही नहीं रहेगा क्योंकि उस परमात्मा की दया उन गाजर मूलादि जीवों पर न रहेगी जैसे खुदा की दया पशुओं पर नहीं है और न गाजर मूली खाने वालों की कभी मुक्ति भी न होगी और होगी तो न्याय से विरुद्ध होगी। देखो गोकरणनिधि की भूमिका में:—

श्री स्वामीजी महाराज लिखते हैं कि जो मनुष्य [illegible] प्राणी का प्राण निकाल करके अपना पोषण [illegible] पुरुषों के सामने निन्दित कर्म क्यों न होवे। फिर आगे पृ० १० व ११ मे लिखते हैं कि, मनुष्य पशु पक्षियों के खाने पीने के पदार्थ (घास, वृक्ष, फूल, फलादि) बहुत रचे हैं, ईश्वर ने श्री स्वामी जी का संकेत इस लिये है कि वृक्ष निर्जीव पदार्थ है वे खाने पीने के लिये ईश्वर ने बनाये हैं और साथ ही महर्षि बहादुर ने यह भी लिखा है कि प्राणी जिनमें जीवात्मा है उनको मत मारो। अब क्या आप इन दोनों बातों को मिलाकर देखिये। स्पष्ट निर्णय हो जायगा कि वृक्ष निर्जीव पदार्थ हैं क्योंकि जीवधारियों के मारने का तो निषेध करते हैं और वृक्ष घास आदि को खाने के योग्य कथन करते हैं। फिर क्या शङ्का रह गई वृक्षादि पदार्थ शुद्ध भोजन बिना जीव वाले पदार्थ वृक्ष हैं इससे ईश्वर की कोई भूल नहीं सिद्ध होती क्योंकि मनुष्य जाति शुद्ध वा पवित्र है उसके लिये ईश्वरने वृक्ष बिना जीव वाले रचे हैं। आगे फिर लिखते हैं कि (मांस न खावे न उपदेश करे तो प्राणियों का मारना बन्द हो ही जावे)। इतने पर भी समझदार लोग स्वामी जी के गले मढ़ते हैं कि वह तो वृक्ष को जीवधारी मानते थे। पर यह बात इनकी ठीक नहीं है।

अच्छा फिर आप ही बतावें कि जिन शरीरों में जीवात्मा हो उनका काटना, तोड़ना, मरोड़ना, बिगाड़देना, चीरना, बनारना, रांधना और खाना क्या भले पुरुषों के लिये योग्य है कभी नहीं धर्म पुरुषों का तो काम है कि बेअपराध किसी भी जीव को न मारे।

[प्रश्न] स्वयं टूटे हुए फलों में तो जीव नहीं रहता फिर उसके खाने में कोई दोष नहीं है।

[उत्तर] तो वह फल मुर्दा ठहरा और आप मुर्दा खाने वालों में सुमार भये और मुर्दा खानेवालों की मुक्ति कभी नहीं होती है। क्योंकि वह तो मुर्दा भक्षक वेद के कहे हुए [जान खानों] अर्थात् राक्षस हैं। [प्रश्न] वृक्ष सुषुप्ति अवस्था में है इसी से वृक्षों के काटने से जीव के दुख नहीं होता है और न कोई पाप ही होता है। [उत्तर] अपने मुख से मियां मिट्ठु बनजाना आपको ही सोवे है। भला मैं आपसे पूछता हूं कि जो गाढ़ी निद्रा में सोते हुए मारे गये हैं वह उनके मारनेवाले दण्डनीय क्यों होते हैं। तब तो आप कहदो कि सब कोई जो पशुओं को मारें तो उन पशुओं को बेहोश कर लिया करें। फिर तो सब ही पाप से बच जावेंगे। आप भलो युक्ति से काम लेते हो उस हरे ईख को काटकर लोहे के कोल्हू में पेल कर उसकी नस २ कुचल कर रस निकाल कर अपना पेट भर कर साफ निकल गये ऐसे ही श्री आदि नाथ जी ने भी जैन आचार्य ने एक साल का व्रत माने भूखा रहकर हरी ईख का रस पीकर आनन्द लिया था। अगर वृक्षों में अभिमानी जीव होता तो महात्मा आदि नाथ जी हरी ईख का रस कभी भी न पीते क्योंकि यह अहिंसाधर्मी थे जीवधारी का रस कैसे पी सकते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि वृक्ष निर्जीव ही हैं।

(प्रश्न)—वृक्ष अपने लिये कुछ भी नहीं करते जो कुछ वृक्ष में है सो औरों के लिये हैं अपना तो खाली तमोगुण का नाश करते

हैं। इनके काटने में कोई भी दोष नहीं है। [उत्तर] आपके मतानुसार जो वृक्ष तमोगुण की निवृत्ति करते हैं काटे जाने पर वह तमोगुण की निवृत्ती में बाधा ज़रूर ही होगा [प्रश्न] ईश्वर तुर्ता फुर्ती से ही झटपट फिरसे उस जीव को पैदा कर देता है फिर कोई भी हर्ज नहीं होता हैं (उ०) ऐसे तो मुसलमान भी कह सकते हैं कि इन पशुओं को मारने से कोई हर्ज नहीं हैं तो आप और वह दोनों एक समान ठहरे। [प्र०] फिर आप ही बताओ कि जब वृक्षों में जीव नहीं है तो ये बढ़ते क्यों हैं ? [उ०] बढ़ना धर्म प्रकृति का है और बढ़ानेवाले अग्नि वायु जल आदि हैं ईश्वर नियम के अनुसार (प्र०) जिसमें जीव हैं वही बढ़ सकता हैं निर्जीव नहीं (उ०) अच्छा मैं आपसे पूछता हूं कि मनुष्य जाति के जीव कर्म से ४० वर्ष की अवस्था के वाद में क्यों नहीं बढ़ते जीवात्मा तो उनके शरीर में मौजूद ही है (प्र०) वह घटते हैं घटता भी वही है जिसमें जीव हैं (उ०) वाह २ जी वाह २ आप तर्कवाद एक नम्बर के चुने हुए अटूट युक्तिवाले आपकी बराबरी कौन करे आप एक ही हो बस वृक्ष में जीव सिद्ध करनेवालों में तर्क शिरोमणि जी आपके मरने पर वृक्ष समूह रोवेंगे कहेंगे कि "हमारी बाबत युद्धक्षेत्र में लड़ते थे। हाय कहां चले गये" सुनिये इसका (उत्तर) देखिये कपूर जानदार नहीं है और स्वयं घटता है और मरे हुए बैल के सींग वा खुरी दोनों निर्जीव हैं तो भी ज़मीन में पड़कर सींग खुरी दोनों में अंकुर फूटकर बढ़ने लगते हैं, और एक २ में बीस २ अङ्कुर बढ़ा करते हैं और; दवाई में काम आते हैं मरे हुए पशुओं को उठानेवाले चमार आदि जामे हुए सींग खुरी को अच्छी तरह जानते हैं। (प्र०) वृक्ष जीव हीन है तो वह

काट देने से सूख क्यों जाते हैं (उ०) पानी न मिलने से [प्र०] यही तो जीव सिद्ध होता है ऐसे ही जो मनुष्य की खुराक बन्द करदे तो वह भी मर जायगा [उत्तर] गौणता रूप से तो सब ही निर्जीव पदार्थ खुराक लेते हैं। जैसे दिये को जिन्दगानी खुराक लेकर ही बनी रहती है [प्र०] दीवे और वृक्षों की खुराक में भेद है वृक्ष की जड़ अपने आप कुदरती जरिये वा अपने बल से पानी खींचकर हरे रहते हैं और फूल फल पत्तों डण्डो से प्रजा को आनन्द देते हैं ये बिना जीव के कैसे हो सकता है [उत्तर] दीवा भी वा दिवे की लोय भी अपने बल से ही तेल को खींचकर अपनी जिन्दगानी को कायम रखता है। और प्रकाश रूप फल से प्रजा को आनन्द भी देता है। और जैसे पानी पाने से दूब घास हजारों व करोड़ों वर्ष हरी रह सकती है ऐसे ही दिवा भी तेलके पाने से हजारों लाखों व करोड़ों वर्ष हरा भरा रह सकता है किन्तु हवा का झोका न सन्ताव तो ऐसे ही जलता रहेगा (उ०) वृक्ष हवा से खास ताल्लुक वा विना वायु के नष्ट भ्रष्ट होजाता है इस से इन में जीव प्रतीत होता है। (उत्तर) अग्नि को भी वायु न मिले तो नष्ट हो जाता है तो क्या अग्नि में भी जीव मानोगे। और देखो जो अचार आम निबुका उसको वायु नहीं प्राप्त हो तो वह बीमार हो जाता है तात्पर्य यह है कि सड़ गल जाता है और पांचों भूत स्वयं जड़ होते हुए भी एक दूसरे की अपेक्षा से ही कायम रहते हैं। (प्र०) विना जीव के भी बढ़ते हैं तो सूखी लकड़ी क्यों नहीं बढ़ती (उ०) सूखी लकड़ी भी अनेक बढ़ती हैं जैसे सड़ी हुई लकड़ी खुमीरूप होकर बढ़ती और कई एक पुरानी लकड़ियों में पत्तोसी वा फलू से भी जम आते हैं (प्र०) ज़िन में

जीव है वह अन्दर से बढ़ते हैं और बिना जीव के बाहर से बढ़ते हैं (उत्तर) मरे हुए बैल के सींग वा खुरी खुमी चातुर्मासे में टूटी छत वाले मकान के काष्ट वर्षात में जम आते हैं सफेद रङ्ग की क्षत्रियाँ सी अनेक और वन व जंगल में साल वृक्ष की बोदी लकड़ियों में भी पत्ती जम आती है यह हवन सामग्री में मिलाकर कूटी जाती है ये सब अन्दर से ही बढ़ती है और सीप में मोती अन्दर से ही बढ़ता है पत्थर वा पत्थर का शिलाजीत ये भी सब अन्दर से ही बढ़ते हैं। इन सब में मनुष्यों वाला वा पशु वाला जीव नहीं है । और रेह की भूमि सर्दी के मौसम में अन्दर से बढ़ती है ऊपर सफेद रोड़ी का फूल आ जाता है जिसको सोरा कहते हैं और उसका ही सोड़ा बनता है जो फूल जमीन से उगता है। और पानी में काई उत्पन्न होती है वह भी अन्दर से ही बढ़ती है वा पुरानी लकड़ी में अनेक ढ़ाल सी पैदा हो जाती है।

इति चौथी लहर ॥ ४ ॥

पांचवीं लहर ॥ ५ ॥ प्रारम्भ

[प्रश्न] जैसे चने के अन्दर [दो] दाल हैं वह आपस में दोनों स्त्री पुरुष है यह दोनों मिलकर अङ्कुर रूप पुत्र को उत्पन्न करते हैं अगर चना टूटकर दाल दूर २ हो जाय तो अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता हैं इससे वृक्षों में जीव प्रतीत होता है [उत्तर] गेहूं ज्वार बाजरा आदि के बीजों में दो दाल नहीं है पर अंकुर को सब ही पैदा करते हैं और भी देखिये आलू की जाति एक आलू के दश कतले करये दसों को बोयिये सब में अंकुर उत्पन्न होवगे। ऐसी दशा जिसकी होवे वह जड़ अप्राणि निर्जीव पदार्थ

है [प्रश्न] ऐसे तो किचवे वा कान खजूरे को काट देउ तो दो हो जाते हैं और दोनों जीते रहते हैं [उ०] किन्तु कानखजूरा वा किचुवे का कटा हुआ पीछे का भाग नहीं जी सकता क्यों कि उनके मुह तो है नहीं और जीवधारी मुख के विना खुराक नहीं खा सकता और विना खाये पिये कैसे जी सकेगा कभी नही जी सकता है अगर इन दोनों के कोई मुह खाना खाये के लिये बना कर दिख दे तो आपका प्रश्न सुविकार है नहीं तो नहीं [प्रश्न] कटे हुए लोटते हैं और कान खजूरा कटा हुआ चल भी पड़ता है [उत्तर] युद्धक्षेत्र में शिर कट जाने पर भी मनुष्य लोग तलवार चलाते और दौड़ते भी हैं क्या आपने कभी लड़ाई आदि के इतिहास नहीं पढ़े हैं। मैंने किचवे कानखजूरे दोनों को काटकर देख लिया हैं हां हल चल तो किचवे में ज्यादातर रहती हैं पर जी नहीं सकता ऐसे सब ही जीवधारियों के कटे हुए अङ्ग उछलते वा लोटते हैं यही तो सबूत है कि वृक्ष में जीव नहीं है। क्यों कि उनके कटे हुए डाली आदि में कोई किसी प्रकार कीं हलचल नहीं होती है । और उस डाली को कहीं गाड़ देते हैं तो वह कटी हुई डाली फिर से वृक्ष बन जाती है इसी से वृक्ष जड़ पदार्थ है। जो हिलते डोलते नहीं हैं । [प्र०] वृक्षों में जीह सुषप्ति अवस्था में है इसी से हिलता नही है । [उ०] कुछ का कुछ कह देते हो विचार शक्ति से भी काम लेते हो वा नहीं जब किसी को नीद आ जाती है तो उस के हाथ पांव ढ़ीले पड़ जाते हैं और आंख कीं पलकों तक नहीं हिला सकता न कोई स्त्री सुपप्ति दशा में पुत्र पैदा कर सकती न कोई सुषुप्ति अवस्था में जन्म भी नहीं ले सकता है जब किसी

को सुपप्ति होती है तो उसका शरीर ढीला पड़ जाता है देह की ताकत जाती रहती है शरीर बलहीन होजाता है पर वृक्ष, अग्नि के सदृश्य चेतन से ही दिखाई देते हैं पेड़ में निद्र की दशा नहीं है उसका कोई अंग वा पुरजा ढीला नही पड़ता है क्या सुपप्ति अवस्था ऐसी होती है कि फूल खिलते हैं कमल वृक्ष व धान का पेड़ जितना पानी चढ़ता जायेगा उतना ही वह पेड़ भी बढ़ा चला जायेगा यह सुपप्ति के लक्षण नहीं युक्ति सुन पक्ष न्याय का विरोधी है जब आपका सब से भारी सुपप्ति वाला प्रश्न खण्डन होकर गिर गया तो आपके पास रह क्या गया अर्थात् कुछ भी नहीं रहा है। और देखिये जिस खेत में कंकड़ी बोई हुई है उसमें रात्री के समय में सु सु शब्द होते रहते हैं ज्यों २ कंकड़ी बढ़ती है त्यों २ शब्द जोर २ से होते हैं वृक्षों की जड़ें बड़े २ जोर मार कर धरनी में धसनी २ दश दश गज नीचे तक जकड़ लेतीं हैं पीपल की जड़ें पक्की दीवाल को छेद कर पार होजाती हैं रात को फूल बुच कर दिन को खिल जाना आज की तोड़ी हुई कली कल को खिल जाती है छुई मुई घास हिल जाने से बुच जाती हैं इन सब बात से यह सिद्ध होता है कि वृक्ष जाति सुपप्ति अवस्था में नहीं है परन्तु एक ऐसी चमतकार में है कि जैसे दीपक कैसी रोशनी की हालत में है जैसे एक जलते हुये दिये को कोई भी सुपप्ति की दशा में नहीं कह सकता हैं। ऐसे ही एक खिलते हुये पेड़ को भी कोई सुपप्ति अवस्था का खिताब नहीं दे सकता है।

इति पंचमी लहर ॥५॥

छठो लरर ॥६॥ प्रारम्भ

अब श्रीमन् (जन्टल मैन) प्रश्न करते हैं (जन्टरमैन) आप जगदीशचन्द्र बोस जी की युक्तियों का खण्डन न कर सकोगे उन्होंने नई २ बात सिद्ध करके दिखाई है वृक्ष पत्थर सोना, चांदी पहाड़ादि में भी कीड़े मकोड़े के सामान ही जीव आत्मा बताया है इसका आपके यश क्या सवाधान हैं सोतो कहो। (गरीब) बोस जी मनुष्यादि पशुओं के सदृश जीव वृक्ष में भी मानते हैं तो भूल के चक्र में फँसे हैं क्योंकि जीवात्मा के ज्ञान गुण आदि लक्षण वृक्षों में है नहीं ज्ञान के साधन इन्द्रिय हैं सो भी वृक्षादि में नहीं है जब किसी मनुष्य की कान इन्द्रिय निष्ट हो जाती है तो उसको शब्द का ज्ञान नहीं होता और मिश्री हाथ में लेने से उसके रस का ज्ञान नहीं होता तब मिश्री को जीभ पर धरते हैं तब ही उसके रस का ज्ञान होता हैं इस से यह सिद्ध हुआ कि वृक्ष आदि में ज्ञान नही है और न उन में जीव हैं देखो स्वांस और जीवात्मा की डोरी लगी हुई है जैसे तेल और दिवे की डोरी लगी हुई है ऐसे ही वृक्ष और पानी की डोरी लगी हुई हैं वृक्षों में सांस लेने के लिये कोई छिद्र नहीं है सांस आने जाने के लिये नाक मुंह वा पेट में पंखा वा धोकनी आदि साधन होना चाहिये सौका झगड़ा यह है कि वृक्ष निर्जीव पदार्थ है युक्ति शून्य सिद्धान्त मानना लड़कपन की बात है जब अनेक पहलुओं के साधनोंसे भी गिरकर वृक्ष निर्जीव ही सिद्ध होते हैं तो फिर बोस जी का वृक्षों में जीव का ढिढोरा पीटना योग्य नहीं है वेद के कर्ता से बोस जी में जादे विचार नहीं है। वेद वृक्षों

में असली जीव नहीं मानता है। देखो अथर्व० का० ३ सू० १०। म० ५। ८। १०। १२। में (एकष्टका) मन्त्र ८में वृक्षों के लिये आया कि भोजन स्थान प्रकृति अकेली है भोजन के देने वाले वृक्ष देवता हैं। पेड़ के ऊपर वक्कल हैं अन्दर एक हाड़सा है जीवों के शरीरों में तरह २ की बनावट है जैसे एक गाय के दो सींग वा चार पांव है ऐसे ही सब गायों के अंग एक से है ऐसे ही सब मनुष्य जाति के अंग समान है जीवधारियों की सब जाति एक समान अङ्गोवाली है और जड़ पदर्थों में जैसे दो पीपल वृक्ष एक ही समय में पैदा हुये हैं एक पेढ़ के तो तीन जड़ और दो डालीं दूसरे के सौ जड़ पचास डाली हैं ऐसे ही सब वृक्ष जाति में कमी वेशी का झगड़ा है (जन्टरमेन) जो कोई अपने कैसा पैदा कर लेवे उसमें जीव है वृक्ष से वृक्ष बनता इसीसे उसमें जीव हैं। (गरीब) संचा अपने कैसा संचा पैदा करता है वह जड़ है। तस्वीर से तस्वीर दीपक से दीपक जलते हैं अग्नि से अग्नि उत्पन्न होता है केले से कपूर पत्थर के पहाड़ से शिलाजीत मृग से कस्तूरी गउ से गउ लोचन हाथी से गजमुक्ता सीप से मोती सर्प से मणि बिछु से जहर्मोरा जमीन से धातु अनेक हीरा जवाहिर लशुनिया आदि यह कोई नियम नहीं है कि अपने कैसा पैदा कर तो जीवों में सुमार हों (ज०) जो अपने कैसा पैदा न कर सकें उसमें जीव नहीं हैं [गरीब] हिजड़े खिम्बड़, खुमी, कूकर, छता, काई के वृक्ष, गिजाई किचवे, सुरसी डोरा आदि अनेक जाति ऐसी है कि जो गर्भ से नहीं होती है। [अन्टरमेन] दर्खत बाहर की हवा लेता है और अपने अन्दर की हवा बाहर फेंकता है। [गरीब] दिया, लालटेन, अग्नि वह सब

बाहर से अन्दर हवा को लेते और देते भी हैं। धोंकनी व सुनारों की बतक भी ऐसे ही करती है जो ताबे की है। स्वयं अग्नि को फूंकती है। क्या यह सब जीवधारी हैं। [जन्टलमेन] दर्खत काटे जाने से सूखता है यह उसका जीव निकलना हैं। [गरीब] तो यह बताइये कि गन्ठे आलू, सलगम. घुंय्या आदि सबजी बेचने वाले दूकनानदार के घर में पड़े २ क्यों बढ़ते हैं बैसाख महीना के कटे गन्ठे कार्तिक मार्गशिर में जाकर स्वयं बढ़ने लगते हैं। जन्टलमैन चुप फिर से ऊंची सांस लेकर बोला [जन्टलमैन] क्या गन्ठे आदि फिर से हरे होजाते हैं [ग०] हां फिर से हरे होजाते हैं और वैल के सींग व खुरी में भी हरे अंकुर जमीन से खुराक लेकर अन्दर से बढ़ते हैं। [ज०] बोस जी ने तीन रत्ती बजन जीव का जान लिया है मैं जानू यह ठीक होगा [गरीब] श्री बोसजी न तो जीव का बोझ तीन ही रत्ती जाना है तुम तीन सेर का जान लो यह आप लोगों के घर की बात है अन्धों में काने सरदार होते ही हैं यह कोई नई बात नहीं है। तीन रत्ती भारी जीव है तो सूक्ष्म शरीर मच्छर भुनगे आदि के शरीर में प्रवेश नहीं होसकता और न बड़ पीपल के सूक्ष्म बीज में भी नहीं समावेगा क्योंकि यह बीज एक रत्ती के साथ बासो तुल जायगे। और चांदी सोने में जीव मानते हो तो रेही सोरा सोडा बिजली बारूदादि में भी क्यों नहीं मानते हो पैदायश तो इनकी भी ऐसे ही होती है। [ज०] ईश्वर कोई वस्तु जीव के बिना बनता ही नहीं है [ग०] ईश्वर दया मय है वह खाने पीने की वस्तुओं में कभी अभिमानी जीव का मेल करता ही नहीं हैं वह पूर्ण ज्ञानवान विचार सिल सच्चिदानन्द स्वरूप है उसने तो यजुर्वेद अ० ४० मन्त्र १ में बताया है

कि [तेन त्यगतेन] अर्थ अन्न वृक्ष में जीव का त्याग है इसको चर प्राणि मात्रनुभाव करो ।

देखो श्री स्वामी जी का भाष। [ज०] जिसमें हरकत पाई जाती है वह जीव जरूर ही है क्योंकि हरकत बिना जीव के कौन कर सकता है। [गरीब] यह सर्वत्र ऐसा मानना ठीक नहीं है जैसे कि चूने में पानी मिला देने से दोनों रधने लगते हैं और उछलते भी हैं जब भूमि की गंधक में पानी मिल जाता है तो आग उत्पन्न होकर धुम पैदा होता है वह धुम जब बाहर आना चाहता है तो धरती को हिलाता है। और चुम्बक पत्थर लोहे को घसीट लेता ऐसे ही चन्द्र कान्ता मणि पत्थर है उसके अन्दर से पानी की धार निकलती है चांद की चांदनी पाकर जल की धार निकलती है विगैर चांदनी के नहीं निकलती है और कम्पाश की सुई हर समय उत्तर, दक्षिण रहती है इसी के जरिये से अन्धेरी रात में समुन्द्र के जहाज चलते हैं। यह सब जड़ पदार्थ है परन्तु हरकतें इन्तजामी के पाये बन्द हैं ये समान क्रिया है जीव की क्रिया विशेष होती है शरीर का हिलाना आदि जीव की क्रिया है जाना फिर मुड़ आना इसको क्रिया विशेष कहते हैं। [जन्टलमेन जैनी वृक्ष में आदमी वाला जीव मानते हैं कहते हैं कि पहले दश वृक्ष मट्टी के थे वह गाना गाते थे रोटी आदि भोजन भी बनाते थे गहना गढ़ते थे बर्तन बनाते थे। (गरीब) जैन लोग भी जीव का ज्ञान गुण मानते हैं तो वह वृक्षों में ज्ञानादि गुण दिखावे ऐसा युक्ति सून्य पक्ष किस काम का है और न जैन आचार्य यथार्थ को जानते भी नही थे तब कैसे मानी जाय इनकी बात देखो प्रश्नार्थ में इनके दो तीन उदाहरण दिखलाता हूं।

हरीबंश पुराण में राजा वसु के पिता का नाम अभेचन्द्र और माता का नाम बसुमती है और पद्म पुराण के अनुसार इनके पिता का नाम ययाति और माता का सुरकान्ता है देखो इसमें रात दिन का बीच है यह यथार्थ नहीं है। दूसरी बात जैनी कहते है कि तीर्थंकार की बाणी को हाथी से लेकर कीड़ा तक सुनते थे। इस लेख से तो १, २, ३, ४ एक से चार इन्द्रिय जीवों तक की कथा अशभाव हुई। इससे सब जीवों के ज्ञान शुद्ध होते हैं तीसरी बात दिगम्बर कहते हैं कि भरत महाराजा के दिगम्बर स्त्री ९६००० हजार थीं और सितम्बर ६५००० पैसठ ही हजार बताते हैं और महाभारत कृष्ण जी के समय में ४० हाथ के ऊंचे मनुष्य थे। जैन मत में अब देखिये दिल्ली का पुराना किला जो पांडव अर्जुन के समय का है उसकी छत तो वही ३,४ हाथ के आदमियों के योग्य है ऐसी ही इनके वृक्ष में जीव की बात भी है भला वृक्ष रोटी गहना बाजादि बजाने का काम कैसे कर सकता है।

(जन्टलमैन) कुरान में लिखा है कि वृक्ष मुहम्मद साहब को आते देखकर उनको झुक २ कर सलाम करते थे बताइये इसका खण्डन कैसे हो सकता है (गरीब) इसका खण्डन तो सहज है क्योंकि वृक्षों के आंख ही नहीं है जब आंख ही नहीं तो पेड़ किसी को आते वा जाते हुये को कैसे देख सकते हैं। कभी नहीं और न पेड़ में झुकने मुड़ने की शक्ति भी नहीं इस से वह बात हलकी हैं गम्भीर नहीं ; देखो देखना, झुकना मुड़ना और नमस्ते आदि करना मनुन्यों ही के लिये है सिखाने से पशु भी कर सकते हैं। परन्तु वृक्ष नहीं कर सकते। (जन्टरमैन) परन्तु अंग्रेज बड़े अकलबन्द हैं वह इस बात को भी ठीक २

मानते होंगे। (गरीब) परन्तु अंग्रेज लोग तो घबड़ा रहे हैं कभी कुछ और कभी कुछ मानलेते हैं, सुनते हैं कि पहले तो लोग स्त्रियों में भी जीवात्मा नहीं मानते थे कभी पशुओं में जीव नहीं मानते, कभी वृक्षों में भी मान लेते हैं यह हालत है उनकी। [जन्टरमैन] देखो वृक्ष कितने ऊंचे तक पानी को खींचकर लेजाते हैं जीव के बिना ऐसा नहीं हो सकता है।

[गरीब] जितने भी निर्जीव पदार्थ हैं वह सब बिना मुंह वाले हैं तेल व पानी खीचने की उन सब में आकर्षण शक्ति मौजूद है देखो लम्बीसी धोती ऊंची छत में वा पेड़ की डाल में बांधकर लटका देना नीचे एक मट्टी के तेल का तसला भर कर धोती का सिरा टिका देना देखो फिर धोती तेल को ऊपर तक चढ़ा कर दम लेती है क्या इस धोती में भी जीव है। और मट्टी का ढेला पानी को पी जाता है ज्योति तेल पी लेती है और न मिले तो उदास रहती है असाढ़ में भूमि वर्षा जल की इच्छा करती है न वर्षे तो भयावनी सी हो जाती है देखो वायु की गति स्वयं सुभाव से ही दौड़ती हुई जा रही है उसे कोई खीचता नहीं है न उसमें बैल वा घोड़े ही जुते हैं ऐसे ही निर्जीव पदार्थ विना मुंह वाले एक दूसरे की खुराक भी होते है ईश्वर की कृपा से वृक्षादि अ-प्राणि होते हुए प्राणियों के लिये सुखदाता है इस में इतनी बात और भी समझनी चाहिये कि विना ही जीव के पदार्थ इतना कार्य कर सकते हैं जीवधारी नहीं क्यों कि जीव वाले थक जाते हैं और थक कर डोब देते हैं देखो जड़ पदार्थों में ही इतनी शक्ति है कि दिन रात काम देते हैं वायु रात दिन चलता है ऐसे ही सूर्य चन्द्रमा आठो पहर काम देते हैं अग्नि भी ऐसे दिन रात काम

देती है ऐसे ही एक दिवा आठों पहर जले जाता है ऐसे ही एक वृक्ष दो हजार वर्ष तक ज्यों का त्यों खड़ा रहता है अगर उस पेड़ में जीव होता तो थककर गिर जाता यह बात ज्यों की त्यों जाणना इतने वर्षों तक जीवधारी नहीं खड़ा रह सकता यह बिना मुंह वाले जड़ पदार्थ परमेश्वर की कृपा से बड़े २ महान कार्य को भी करते हैं कोई आश्चर्य की बात नहीं है। [जेन्टलमैन] बोस जी ने वृक्षों में नस नाड़ी वा भड़कना आदि बताई है जो बिना जीवके हो नहीं सकती [गरीब] यह कोई सिद्धि कारक लेख नहीं है नस नाड़ी तो और बात होती है ये तो वृक्ष में है नहीं परन्तु प्रमाणों का कनक्शन तो जरूर ही जड़ से लेकर फुनगी तक जुड़ा है और भड़कना कोई जीव का लक्षण नहीं है बादल गर्जता है बिजुली तड़फती है भूकम्प होता है तारे खेवते हैं चांद सूर्य कुडल मारते है आग धड़धड़ाती है पर इनसब को कोई जीवधारी नहीं मानते सब जैनियों के।

भला जो पेड़ बुढ़ापे में अन्दर से पोले व थोथे हो गये हैं उन पेढ़ों के अन्दर दीमक आदि कीड़ों ने खा कर मट्टी :ही मट्टी कर डाली है खाली पतले से खपड़े के सारे पेड़ खड़ा हैं। तो बताइये उनकी नस माड़ो कहां गई। सब पोल ही पोल है। ऐसी युक्ति बे आधार है।

[ज०] बोस जी कहते हैं कि वृक्ष हंसता भी है [ग०] जैनियों से बोस कम ही रहे क्यों कि उन्होंने किन्होंने जैनियों ने बताया है कि वृक्ष बाजा बजाते गहना वर्तन बनाते थे इन बातों के मानने वाले की बुद्धि की तारीफ करनी चाहिये। भला जब पशु भी नहीं हंसते तो पेड़ कैसे हंसेगा देखो हंसना तो बिना

मनुष्य जाति के प्रत्यक्ष में किसी पशु से भी नहीं बनता और रोना मनुष्य वा कुत्ता दो ही जाति में होता है तो वृक्षादि जड़ पदार्थ रो नहीं सकते हैं।

[ज०] बोस जी ने यह बताया है कि वृक्ष को हमेशा सुबह प्रातः काल जाकर खूब डाटकर धमकाया करे और यह कहता रहे कि हे वृक्ष तू बढ़ नहीं तो मैं तेरे मारूंगा। वृक्ष सुनकर डर जायगा और डर कर बढ़ने लगेगा। [गरीब] जिसने ये बात भी सज मान ली है वह कुछ भी नहीं जानता हैं क्योंकि जब कोई आदमी भी कहने सुनने से नहीं बढ़ सकता तो फिर जड़ वृक्ष की तो कथा ही क्या कहनी हैं ऐसी २ बातें सब फजूल ही हैं।

देखो बाबू जन्टलमैन जी जरा संभल कर बात चीत करो आपका पक्ष सच्चा नही ऐसे ही अटकना अच्छा नहीं जरा सोच विचार के काम लेना चाहिये। मैंने पेड़ चीर २ कर देख लिये हैं एक के कई २ टुकड़े हो जाते हैं जीव अखंड वस्तु है दूब घास हैं चाहे इस दूब घास के कितने ही खंड कर डालो तो भी कोई हरज़ की बात नहीं है बड़ के पेड़ के आप से आप ही खण्ड हो जाते हैं और हर एक पेड़ के चीर देने से वह पेड़ ज्यों का त्यों हरा रहता है और हाथी से लेकर क्रिमी कीट पतङ्गादि तक किसी के भी शरीर को शिर से पांव तक चीर कर देखिये वह कभी भी जीता नहीं रहेगा और वृक्ष को बीचों बीच से जड़ सहित चीर २ कर देख लिया है। इसके लिये श्री मान् डाक्टर उङ्गरसेन जी की इस बात में साक्षी भी है इन डाक्टर साहब ने चिरे हुए पेड़ अपनी आंख से देखकर मुझको सार्टीफिकेट भी दिया है चार पेड़ चीरे जिन में किकर का २ आम का ३ फूल का ४ लसोढा

जिन के फल चिपकने होते हैं। ये चारों वृक्ष चीर कर देखे थे सो सूके नहीं हरे रहे। इससे सिद्ध हुआ कि वृक्ष में जीव नहीं परन्तु वृक्ष जड़ पदार्थ है। और जीवधारियों के शरीर में एक शिर होता है वृक्षों के अनेक फुनगो हैं और जीव वाले शिर में ज्ञान इन्द्रिय होती है यह दशा सब जीवधारियों की है। इस शिर के काट देने से फिर कोई जीवित भी नहीं है इस से वृक्ष की हालत वा बनावटी न्यारी है इन सब बातों से वृक्ष जड़ सिद्ध होता है। [जन्टरमेंन] आप कुछ पढ़े न लिखे दावा करते हो इतना बड़ा कि जिससे पढ़े हुए के भी छक्के छुटाते है न जाने ये कहां तक पार पावेगा [गरबि] यह बात आप को सुनने की है पर इतना और भी मानलो कि विचार भी बड़ी महान वस्तु है देखो कितने ही पुरुष विना पढ़े हुए बिस हाथ के नीचे धरती की हालत ऊपर सूंघ कर बता देते है कि इस स्थान में पानी मीठा है या इस स्थान में खारा है। और परीक्षा करके देखने से ज्यों का त्यों सच्चा उतरता है और कितने बिना पढ़े हुए नाड़ी के वैद्य भी हैं अगर किसी का हाथ वा पांव उतर जाय तो ज्यों का त्यों चुस्त चढ़ा देता हैं किन्तु जो कि पढ़ा हुआ न कर सके सो अनपढ़ करते हैं और बहुत पढ़े हुए भी विचारशील अच्छे हैं किन्तु बहुत से पढ़े लिखे भी है परन्तु उनसे तो अनपढ़ ही अच्छे होते हैं यह सब बुराई वा भलाई अच्छा वा खराब होना विचार पर ही निर्भर है।

(जण्टलमैन) पुराणों में लिखा है कि पहले पर्वत दौड़ते थे और उनके पर भी थे वह पर इन्द्रजी ने काट दिये और यह भी लिखा है कि दो गन्धर्फ किसी ऋषि के के सर्प से वृक्ष योनि

में जन्म लेते भये जब श्री कृष्ण जी ने ऊखल बझाकर दोनों वृक्ष तोड़ दिये तो वह दोनों गन्धर्प मुक्ति को प्राप्त हुए। इससे सिद्ध हो गया कि वृक्ष में अभमानी जीव है। (गरीब) "सासनाशने०" यह यजुर्वेद अ० ३१।४॥ में श्री पं० सयणाचार्य जी का भाष्य और श्री पं० महीधर जी का भाष्य दोनों की एक ही सम्मति है। [सासना] जो भोजन खाता है वह जीवधारी है और जो भोजन नहीं खाता [अनशन] है वह नदी, पर्वत, भूमि निर्जीव हैं। यह अर्थ दोनों पंडितों का किया हुआ है। अब यह विचारना चाहिये कि वृक्ष किधर है वेद की शैली से तो वृक्ष भूमि शब्द के अन्दर ही गर्भित हैं परन्तु पंडित लोगों ने वृक्षों को अलग किया हैं यद्यपि उक्त पंडितों ने इस मन्त्र का अर्थ झुकाया है क्योंकि इन्होंने यहां पर भोजन के अर्थ व्यवहार के लिये हैं इनका संकेत वृक्षों में जीव के लिये है अगर भोजन वृक्ष भी खाता है तो दिवा भी तेल का भोजन खाता है क्या वह व्यवहार से पृथक है ? यह इनका अर्थ ठीक नहीं है।

झुकाया गया है क्यों कि (साशना) शब्द का अर्थ ठोस भोजन का है क्या वृक्ष ठोस भोजन खाता है। दिवा तेल चूसता है और वृक्ष पानी तो क्या (साशना) शब्द से तेल पानी के अर्थ सिद्ध होते हैं कभी नहीं जब आप लोगों ने पर्वत को निर्जीव लिखा तो उनका दौड़ना इन्द्र का पर काटना मिथ्या हुआ ऐसे ही वृक्षों का जीव भी मिथ्या ही है क्योंकि (चर भक्षणे) इससे सिद्ध होता है कि जो चलते हैं वही भोजन भी करते हैं। वृक्ष अचर है चर नहीं है। और भी देखो वृक्षों के भोजन करने

में सन्देह है क्योंकि श्री सुक्राचार्य जी इस बात को नहीं मानते कि वृक्ष भी आहार करते हैं ।

।। आहार निद्रा भय मिथन पशु समान ।।

अर्थ–(आहार) खाना (निद्र) सोना (भय) डरना (मिथन) स्त्री पुरुष रूपी समागत रति व्यवहार भोग इतनी बात वृक्षों में नहीं है पशु तक ही है । इस श्लोक का आशय ये ही है और जो लोग कहते हैं कि वृक्ष सुषुप्ति अवस्था में है तो उनका कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस लेख में [निद्रा] पशु तक ही हैं यह बताया है । यह (श्लोक) स्वामी दयानन्द जी ने भी माना है गोकर्णनिधि में । इन सब धातु से यह तो भली भांति सिद्ध हो जाता है कि वृक्ष निर्जीव हैं । इतने पर भी न माने तो हठ-धर्मी है । और देखो लघुकौमदी में ।

वा अप्राणि जाते श्चारज्वादी नाम । इस के भाष में तूवी की वेल वा बेर वृक्ष को अप्राणि लिखा है अप्राणि के अर्थ हैं प्राणी वरजित विना जीव के (अलावु ककन्धू अप्राणि नाम ।) देखो लघु कौमदी को, फिर बात करना ।

इति छटी लहर ॥ ६ ॥

सातवीं लहर प्रारम्भ ॥७॥

बहुत से मनुष्य जो सत्यवादी हैं वह जब बात के मर्म वा असूल को समझ लेते है तो फिर हठ धर्मी नहीं करते अपने पूर्व मन्तव्य को त्याग कर वर्तमान के समझे हुए को मान लेते हैं जैसे श्रीमान पंडित विष्णुमित्र जी ने मान लिया था पं० जी का और मेरे वृक्षों में जीव है या नहीं तेरह महीने तक बाद विवाद होता

हरी लकड़ी नासपाती की थीं जिसमें दो किस्म के पत्ते थे वह भी मैंने पं० जी को दिखाने के लिये लाकर आर्य समाज पानीपत मादर में रखी और पं०जी उस दो रूपवाली लकड़ीको देखकर बहुत ही हंसते रहे और अपनी बड़ी २ मजबूत युक्ति भी देते रहे हैं कितने ही बार पं० जी में और मुझ में तूब तड़ाक भी वृक्ष में जीव की बाबत हो गया तो मैं फिर अपने सबूत को पेश कर देता था जब एक दिन मैंने मरे हुए बैल का [सींग] जिसमें हरे अंकुर आप से आप जमे हुए नोस से भी घणे थे पं० जी उस जमे हुए सींग को देख कर कहने लगा कि अब मैंने मान लिया है कि वृक्ष में जीव नहीं है अब आप मेरे लिये कोई भी परिश्रम न करिये वह बात पं० जी ने पानीपत के बालकराम स्कूल में सौ मनुष्यों के बीच कही थी ऐसे मनुष्य सत्य वादी होते हैं। [ज०] पुनर जन्म नाम के पुस्तक में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने भी वृक्षों में जीव माना है और श्री मान् नारायण स्वामी ने भी आत्मदर्शन वा मृत्यु रहस्य आदि ग्रन्थों में वृक्ष को जीवधारी लिखा है [ग०] किन्तु आलस का फल वेद न पढने से लिखा है जो को आलसी होकर अपने धर्म ग्रन्थों को तो पढ़ते नहीं हैं तो फिर यथार्थ कैसे लिखा जा सकता है जिस विषय को मनुष्य ठीक २ सर इतने न समझले तब तक उसके लिये लेखनी को कभी भी न उठावे और न बिन जाने हुए कभी उपदेश भी नहीं करना चाहिये पुस्तक किस लिये रची जाती है इसी लिये तो कि जगत् में सचाई का प्रचार हो न कि गलतफैमी के लिये जो कोई अपने धर्म ग्रन्थ को जबलों पढ़कर ठीक २ जाण न लेवे तब तक धर्म के विषय में सोच विचार कर पुस्तक लिखना चाहिये वृक्षों में जीव का बता-

बना इनकी भूल है देखो स्वामी जी स० प्र० ईसाइयों के खंडन ७८ में वृक्ष जड़ पदार्थ है ये लेख।

[ज०] आपने बड़ी बातें मारीं हैं क्या आपने वेद पढ़ा है

[ग०] हां मैंने वेद का भष्य पढ़ा है और वृक्ष में जीव नहीं है इस बात को मैं ठीक २ जानता हूं इसी से मैंने बातें मारी वा दवा देकर कही है और कोई बात मैं नहीं जानता हूं।

[ज०] क्या आपसे ईश्वर कह गये हैं कि वृक्ष में जीव नहीं है या आप पर क्या इलाहम होता है जो वृक्ष की हालत जानते हैं [गरीब] विचार ऐसी वस्तु है कि उससे सब संशोधन हल हो जाते हैं ज्ञान गुण स्वभाव से वस्तु का लक्षण होता है और लक्षण से लक्ष को दृढ़ विचार करने से जान लेते हैं जिन्होंने जानने की गम है वह जान सकते हैं जब किसी वस्तु के जानने के लिये मन को सब जगह से हटाकर उसी एक लक्ष को लेकर कसौटी रूपी बुद्धि के सायान पर लक्षको हरदम घिसता हैं तो कुछ ना कुछ जरूर ही कर्ता को हासिल हो जाता है। और जितनी अदृश्य वस्तु है वह सब उन २ के लक्षण जो गुण हैं उसी से सब जानी जाती हैं जैसे कि जीवात्मा व परमात्मा को स्वयं योगीजन को छोड़कर किसी ने भी प्रत्यक्ष नहीं देखा है परन्तु जीवात्मा के चेतनता ज्ञान आदि गुणों से जीव को या परमात्मा के सर्वज्ञ सृष्टि कर्तादि गुणों से ईश्वर को जान लेते हैं ऐसे वृक्षों में हका जीव भी वृक्ष ज्ञान से शून्य है दुख भी वृक्ष के नहीं होता है। और न उनमें प्रीति ही होती है न सुख ही वृक्ष मानता दिवे पतु जब पानी न मिले तो सूखने लगता है ऐसे ही दिवे की भी हालत है जब तेल नहीं मिलता तो दीपक भी सूकने

लगता है जैसे दिये की ज़िन्दगानी तेल से है ऐसे ही वृक्ष की ज़िन्दगानी पानी से है। वृक्ष में विशेषता नहीं मिलती है। इस से वृक्ष जड़ पदार्थ सिद्ध होता है चेतन नहीं है। बिना जीव के है। भोग पदार्थ है वृक्ष भोक्ता नहीं हैं। 'चिद्वसानो भोगेः'। सांख्यदर्शन। अ० १। १०४॥

चेतन्यता का जो अवसान अर्थात अभाव है उसे भोग्य कहते हैं। यहां पर मदर्षि भोक्ता और भोग को पृथक् पृथक् करते हैं क्योंकि जड़ पदार्थ भोग होते हैं और चेतन भोक्ता होता है तथा भोग सदा परिणामी होता है और भोक्ता एक रस वा चेतन होता है। स्वामी दर्शनानन्द जी का भाष्य। देखो वृक्ष में चेतन्ता न होने से जड़ है वा भोग है भोगता नहीं है।

[ज०] श्री मान्यवर पं० मुरारीलाल शर्मा जी भी वृक्षों में जीव मानते थे [ग०] हां पं० जी से और मुझसे शास्त्रार्थ हुआ था जिस में दश पुरुष देहली के चुन कर बुलाये थे वही दश मनुष्य मध्यस्थ भी थे पं० मु० जी ने कहा कि जो तुम हार गये तो तुम से सौ १०० रुपये ले लिये जावेंगे। जिसमें २५ रुपया रोकड़ा जमा कराये गये थे और यह भी करार हुआ था कि वेद से वृक्षों को निर्जीव सिद्ध करके दिखाना होगा फिर वह दस आदमी भी आये थे वा बात चीत भी हुई वेद से वृक्षों को जड़ सिद्ध कर दिया गया दसों ने उन्होंने और पंडित जी ने भी उस समय तो वृक्षों को जड़ मानकर मेरे रुपये मुझको दे दिये और मेरे परिश्रम को धन्यवाद भी दिया था। पं० जी ने कहा कि तुमने बहुत खोज किया है वृक्षों के जीव विषय में इसी से हम तुम को धन्यवाद देते हैं।

[जन्टलमैन]: आप इस बात को अनेक बार कहते है कि वृक्षों में ज्ञान के न होने से उनमें जीव का निश्चय नहीं होता तो क्या मनुष्य नींद में सो जाता है तो उसके भी न तो दुख होता है और न उसमें ज्ञान रहता है तो क्या उस अवस्था में वह मनुष्य भी जीव रहित है [गरीब] जब सोते आदमी के कुछ काट लेता है तो वह उठकर कहता है कि मेरे किसी ने काट लिया है अगर वृक्ष में दस बीस किल्ला लोहे के ठोंक कर दूसारा वा आरपार कर दें तो भी वृक्ष हरज नही मानता न सूखता न बढ़ने की रफ्तार में भी कोई प्रकार का वाधा नहीं आता है और तो क्या कहूं अगर वृक्ष में कई एक सूराख दूसरा कर देने से भी वाधा नहीं होता और कहां तक कहूं सारा पेड़ युक्ति से काटा जा सकता है और ज्यों का त्यों हरा भी रह सकता है बीस तीस वर्ष तक फूल फल भी देता रहेगा देखो पेड़ को ऐसे काटे कि जो ३२ अंगुली पेड़ मोटा हो तो उसको सोलह अंगुल जमीन के पास से दोनों बगली ८। ८ अंगुल काटदे पुनः ऊपर से भी चार अंगुली काटे, कटे हुए को बचाकर विना कटे को ही काटे पुनः चार पुनः चार जैसे यह चिन्ह लगे हैं ऐसे २ हुशियार कारीगर से ऐसा कटा कर उस पेड़ के चारो तरफ और सूकी लकड़ी लगा देनी चाहिये जिस से पेड़ हवा में गिर न जा और पेड़ की जड़ों में नई मट्टी गिरा दे और पानी भी देता रहे आंधी जो जोरदार हवा से भी बचावे तो वह पेड़ बहुत दिन तक फूल फल देता रहेगा । इस बात को मिथ्या मत जानो सत्य है । और पेढ़ को बीच से चीर कर जीव अजीव की प्रच्छा के लिये जैसे मैंने किया था तो इस वृक्ष की जो ऊपर चार डाल है उनके बीच में आराधर कर नीचे

जड़ों सहित चीर देने से भी पेड़ फूल फल देता रहेगा परन्तु पेड़ को यत्न से रखा करै पड़ने न दे लकड़ी लगा कर सीधा रखे मैंने खेतों में भी गाजर चीर २ कर देखी है कपाश के पेड़ भी चीर के देखे थे आकाश बेल को यहां से तोड़कर वहां किसी दूसरे वृक्ष पर फेंक दे तो वहां ही हरी की हरी रहेगी। और बढ़ती भी जायगी। एक दूबका नाल बहुत लम्बा बढ़ाता है उसमें गांठ और पोरी होती हैं बांसके तुल्य उस दूबकी सारी पोरी तोड़कर जुदी २ करदे तो भी सूक नहीं सकती हरी रहेगी। इसके आगे जगदीश चन्द्र बोस की कोई भी बात वा युक्ति काम न करेगी। किन्तु वृक्ष भूमि सूर्य चन्द्र सब एक समान ही जड़ हैं भेद नहीं हैं देखो त्वष्टा रुपाणि: हिः प्रऽभुः पशुनः। ऋ० म० १ सु १८८ म ६

स्वामी दयानन्द जी जैसे ईश्वर ने सूक्ष्म कारण रूप प्रकृति से कार्य चित्र विचित्र सूर्य, चन्द्रमा पृथ्वी औषधि :और मनुष्यों के पशुओं के शरीरादि वस्तु बनाई है देखो इस मन्त्र के भाषय में (पशु) शब्द से तो मनुष्य वा पशुओं का अर्थ किया है और (रूपाणि: हिः) शब्द से वृक्ष भूमी चांद सूरज का अर्थ किया इसीसे यह सब जड़ बिना जीव के ही हैं। और वेद में [पशु] शब्द से प्राणि मात्र सब आजाता हैं और वृक्ष पशु शब्द से बाहर माने दूर रहते हैं।

(नींद) की बात भी जानने योग्य है देखो ध्यान से जो आप कहते हैं कि नींद में ज्ञान नहीं रहता है सोता आदमी इतने काम करता है कि दांत चबाता है १ सोते का कंठ घाड़ २ बजाता है २ दो। सांस लेना आवाज पड़ने पर बोलता भी है यह सब जीव

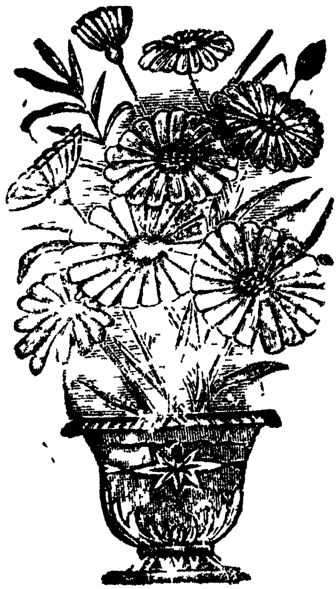
के चिन्ह हैं। वृक्ष ठोठरु नाथ ही है न सांस है न जीव है खाली काष्ट का मार है, न दुख है न सुख है न राग न द्वेष न इच्छा न प्रयत्न ही है खाली दिवे की सिखा वतु पानी से जीवित है ऐसा तो पर्वत के भी फल लगते हैं सिलाजीत रोग नाशक सिलाजीत पत्थर का फल जिसको सब खाते हैं वह अन्दर से ही बढ़ती है। यह सब बातें सोने वाले में होती हैं कुछ न कुछ ज्ञान रहता ही है और सोने वाले इधर के उधर करवट भी बदल लेते हैं भीतर का ज्ञान जीवात्मा को जरूर ही कुछ २ रहता है थोड़ी आवाज से नहीं सुनता जब जोरदार आवाज दी जाती है तो सुन लेता है सुनकर जाग जाता है अगर सोते हुये जीव में ज्ञान का अभाव होता तो आवाज कौन सुनता और बिना ज्ञान के जागता कैसे जैसे कोई मकान के अन्दर थोड़ी आवाज से नही सुन पाता है जब ज्यादा आवाज होती है तो सुन लेता है ऐसी हालत जीव की है जीव का सोना क्या वस्तु है जब ज्ञान इन्द्रिय अपने कामको छोड़ देती है और मन करता रहता है उस दशा का नाम स्वप्न अवस्था है जब मन भी अपने काम को छोड़ देता है तो सुषप्ति हो जाती है बुद्धि जीवात्मा का गुण है वह अपने काम मे लगी रहती है जीव के अन्दरूनी क्रिया बुद्धि करती रहती है। बाहर का काम यो होता है कि जीव बुद्धि को बुद्धि मन को मन इन्द्रियों को इन्द्रिय विषय को प्रेरणा करते रहते हैं जैसे कारखाने के नोकर छुट्टी पाने से कारखाना बन्द होकर सुषुप्ति वत् होता है ऐसे ही शरीर की भी दशा है। वृक्ष में न कोई छुट्टी हो पाने वाला है और न स्वप्न सुषप्ति आदि अवस्था भी वृक्ष में नहीं होती है वह तो आठो पहर एक रस न जाग्रत और न स्वप्न न सुषुप्ति ही वृक्ष में है

यह तो एक रस कुटस्था पषाणवत् प्रीतिहीन के सदृश ज्ञान सुन परोपकार के लिये ईश्वर ने वृक्ष पृथवी वायु जल अग्नि सूर्य चन्द्र आकाश आदि वस्तु बनाई है इन सब में जीव का क्या काम है जो रात दिन आठों पहर काम करते हैं जीवधारी तो थक जाते हैं निर्जीव नहीं थकते हैं ऐसा जानो।

मनुष्य को जब कोई बे होश करता है तो जीवात्मा के इसीसे तो दुख दर्द नहीं होता है कि जो बेहोशी की दवा है वह इन्द्रिय वा मन को विचला लेती है मन और इन्द्रिय अपने असली काम को छोड़कर उस दवा रूपी शत्रु से युध में लवलीन हो जाते हैं वह मन आदि इन्द्रिय बुद्धि व जीव को शरीर में बने व बिगड़े की कोई भी खबर नहीं दे सकते हैं क्योंकि वह तो बेहोशी की दवा रूप शत्रु से लड़ाई में लगे हुये हैं इसीसे जीव के दुख नहीं होता कि वह बिगड़े बने की खबर ही नहीं पाया है सुख व दुख तब ही होता कि जी को उसकी खबर मिले तब इसके बाद में जब इन्द्रिय और मन उस सनरु पे विजय पाते हैं तब शरीर में होश होत है और तबही जीव को खबर होते ही शरीर के दुख दर्द होने लगता है जैसे किसी सेठ की दो दुकान हैं एक देहली में और दूसरी कलकत्ते शहर में हो जब कलकत्ते की दुकान में आग लग कर जल जाती हैं और सेठ जी दिल्ली में खूब नाच तमाशे में मग्न हैं इतने उस जली हुई दुकान को खबर नहीं होती है तब तक किसी प्रकार का सेठ जी के दुख नहीं है चाहे एक महीना भी घटना को बीत गया हो परन्तु सेठ जी के कोई दुख नहीं होता है जब सेठ जी को जली हुई दुकान को

खबर हुई है तब दुख सागर में गोते खाता है ऐसा ही बेहोशी में जानना चाहिये। खून का दौरा वा सांसलेना आदि क्रिया बेहोशी की दशामें भी होते हैं और जो लोग कहते हैं कि बेहोशके दुख नहीं होता है तो इसका सावधान यह है कि प्रथम तो वह स्वभाव से बेहोश नहीं है किसी दूसरे का किया हुआ बेहोश है स्वतन्त्रता से बेहोश नहीं है फिर वृक्षों की तुलना कैसी अगर उस बेहोश के मुंह वा नाक को बोचकर बन्द करके देख फिर उसके भी दुख होगा और बेहोश हाथ पैरभी इधर के उधर मारेगा। इससे जीव-धारी बेहोश की समता वृक्ष निर्जीव जड़ पदार्थों से नहीं मिलती है।

प्रथम भाग समाप्त हुआ



❁ ओ३म् ❁

❁ ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप को नमोनमः ❁

वृक्षजीव मीमांसा दर्शन

दूसरा भाग आरम्भ ॥ ल० १ ॥

इस पुस्तक का प्रथम भाग युक्ति प्रमाण समाप्ति हुआ तथा दूसरा भाग जिसमें ग्रन्थों के प्रमाण सज्जन पुरुषों के बोद्धयर्थ दिखाये जायंगे प्रथम जैन ग्रन्थों के प्रमाण पेश करता हूं तदापि जैन ग्रन्थों में मनुष्य कैसा ही जीव वृक्षों में भी बड़े धूम धाम के साथ लिखा है परन्तु कुछ २ साहायता उन्हीं ग्रन्थों से मुझ गरीब को भी मिलती हैं आप लोगों से विनती है कि पक्ष पात को दूर धर कर इस पर विचार करें कि लेख से क्या सिद्ध होता है मानो चाहे जैसा-

पद्मचन्द्र कोष जो जैनियों के प्रवन्ध से बना है

इस कोष में जीव का लक्षण ऐसा किया है कि मनुष्य से लेकर कीड़े मकौड़े तक है आगे नहीं देखो । (जब) (पु०) जीव+क । देहका अभिमानी आत्मा मनुष्य से लेकर कीड़ों मकोड़ों तक चेतन प्राणों को क्षेत्रज्ञ क्षेत्र को जान्ने हारा स्वरूप से धारण करता हुआ जीव कहलाता है प्राणी ।

बे जीव का लक्षण किया है उस लक्षण के होते हुये एक कम से कम बुद्धि वाला पुरुष भी यह नहीं कह सकता कि वृक्ष में

जीव है क्योंकि इस लेख में जी का कीड़ों मकोड़ों तक ही होना माना है ।

(जन्त) (पुन जनु) (तु) प्राणी प्राण वाला अविद्या दोष से देह में आत्मा का अभिमान करने वाला जीव है ये (जन्तु) धातु का अर्थ है यह भी इसी कोष का प्रमाण है इस लिये कि जीव को प्राणी कहते हैं । और वृक्ष को अप्राणी कहते आये हैं ऋषि मुनि लोग पृष्ट १।४

(जङ्गम जङ्गमों के लक्षण)

(जङ्गम) (त्रि०) गम+यङ्+अच्+गति, शक्ति, रामन्वित, चलने की सामर्थवाल (तन्हा) सांस (पु०) सास लेने वाला जीवात्मा है इस लक्षण के देखने से भी वृक्ष में जीव नहीं प्रतीत होता है क्योंकि इस लेख में साँस लेना चलते फिरते के लिये बताया है । (प्राणी) का लक्षण भी देखिये (प्राणी) जानदार जीव प्राणधारी । पृ० १५५ में जीवों के लिये प्राणधारी सांस का लेना कहां जा है और निर्जीव पदार्थों के लिये प्राण के अर्थ बल के है उनमें सांस लेना आदि क्रिया नहीं है ।

स्वामिकार्तिक या नुप्रेक्षा पृ० १८० ॥ में ॥ २, ३, ४, ५, यह चार प्रकार के जीवों की हिंसा मानी है एक इन्द्रिय जीव का जिक्र तक भी नहीं है और जैनी वृक्ष को एक इन्द्रिय मानते है इस लेख से यह सिद्ध हुआ कि वृक्ष में जीव नहीं है दूसरा प्रमाण इसी पुस्तक के पृ० १०० में चलते फिरते वा खाना खावे कान से सुने वही जीव है ऐसा लिखा है इस लेख के देखने से भी यह प्रतीत होता है कि वृक्ष निर्जीव है । क्योंकि इस लेख में बताया गया है कि जो कान से सुने वह जीव है । और वृक्ष के

कान हैं नहीं इससे इस लेख के देखने से भी वही बात है कि बिना जीव वाला वृक्षादि जगत सिद्ध होता है।

अब राय चन्द्र जैन शास्त्र मालाम् ज्ञानणर्व के पृ० १८६ ॥ में लिखा है कि (चराचर चेतन अचेतन) यह लेख जैसा मूल में है ऐसा ही भाष्य में भी है। चराचर चेतन अचेतन, जैन लोग चाहे इस लेख के आशय कुछ भी क्यों न निकालें इसका असली तात्पर्य तो यही कि चर चेतन है चलने वाले जीव जो है और अचर जो नहीं चलते वृक्ष आदि जीव से रहित जो है। वह श्री जैन आचार्यों के मतानुसार भी वृक्ष मे जीवात्मा सिद्ध नहीं होता है क्योंकि बहुत ठिकाने जैन ग्रन्थो मे फूल तोड़ कर मूर्ति पर चढ़ाना लिखा है अगर फूल मे जीव होता वा फूल जीवधारी होता तो जैनियों का अहिसा पर्मोधर्म आदि सिद्धान्त खंडित हो:जाता है क्योंकि किसी जीवधारी के अङ्ग नहीं तोड़े जाते हैं और कोई ऋषि मुनि भी ऐसी आज्ञा नहीं दे सकता है कि जीव-धारियों के अङ्गों को तोड़ २ कर खाया करें क्योंकि बहुत से जैनी पानों की दूकान भी करते हैं। [प्र०] पत्तों के खाने में पाप नहीं क्योंकि पत्ते जामते नहीं बीज जामता है जो जन्म लेता है वही जीव है। [उ०] बीज डंडी जड़ वा पत्ते यही चार भेद से एक वृक्ष है और वे चारों ही जामते भी हैं देखो नाग फंण कंडीर एक बृक्ष जाति है जिसके पत्ते भी जाम आते है इससे आपकी मतनुसार तो पत्ते भी जीव हैं। अब यह थोड़ासा जैन मत विषय में बतौर नमूने के दिखाया गया है इसी से बुद्धिमान पुरुष बहुतसा रधती हंडी के चावलवत् जान लेंगे। अब इसके बादमें अष्टाध्ययी व्याकरण पे महर्षि दयानन्द सरस्वतीः

जी का भाष्य वेदाङ्ग प्रकाश । भाग दश के धातुओं के प्रमाण लिखे जायंगे । पृ० ८६। सू० २३३ में देखो ।

इति प्रथम लहर समाप्त ॥१॥

दूसरी लहर प्रारम्भ ॥२॥

[रुह] धातु के अर्थ [रूह] बीज जन्मनि प्रादुर्भावे च [बीज] की उत्पत्ति और प्रकट होना । देखिये महानुभाव कहीं इस लेख में जीवात्मा का नाम वा जिकर तक भी नहीं आया हैं । और इसके बाद में उणादि कोष पृ० ११०। सू० ११४ में [रोहति] इस धातु से बीजादुत्पद्यत इति रुहा वृक्षों वा+देखो जीव का गन्धमात्र भी नही है बीज से वृक्ष बिना जीव के ही पैदा हुआ है । इस लेख में भी इसको खूब समझ कर आगे बढ़िये ।

इसके अलावा पृ० १५२ । सू ४१७ में [षूङ] धातु से प्राणि प्रशवे प्राणियों की उत्पत्ति सुयते । सुयतो+इसके आगे पृ० १५७ सू० ४०५ में [प्राणने] धातु से [श्वांस का चलना] यह धातु सेटु है । और भाग दस के पृ० १७३। सू० ४३० । में [मृङ] धातु से प्राण त्यागे । शरीर छूटना । अर्थ है ॥ यह मरना शब्द भी प्राणियों के लिये आता है वृक्षादि अप्राणियों के लिये नहीं आता है । इससे भी वृक्ष निर्जीव ही सिद्ध होते हैं ।

उणादि कोष पृ० ११६ में [चर] धातु से सू० १४० में [चर] [पशुर्वा] अर्थ किया है और [पशु] शब्द का अर्थ प्राणिमात्र के लिये होता है । ध्यान देना कि [पशु] शब्द से वृक्ष लता आदि बेल बाहर है । जैसा कि पशुनाम+औषधिनाम । अथर्व० का० १६ । सू० ३१ म० ५ । अर्थ-[ओषधिनाम] औषधियों सोम-

लता अन्नादिक को की, और [पशुनाम] जीवों की और परमेश्वर देखता हैं। ऐसा ही सब स्थानों में वृक्ष जीवों से अलग है। इससे वृक्ष निर्जीव सिद्ध होता है। इसके आगे चलकर पृ० ६६। सू० ४० में। जीर्व्यतीति जीर्विः। [पशुर्वा] और ये [पशु] शब्द सब जीवों का वाची है। जब जीव शब्द से वृक्ष बाहर है तो नहीं जाने की श्रीमान् नारायण स्वामी जी ने क्या भुल सूझी कि वृक्ष जीव सहित है। न जाने कौनसे शास्त्र से पढ़ कर वृक्षों को जीवधारी मान लिया है। जैसे पौराणि लोग कहीं पर्वत का परों से दौड़ना और कहीं पाषाण की अहिल्या का चरण रज से रूपवती स्त्री का बनजाना। ऐसी ही ये वृक्ष से जीव की बात भी है। दशमें भाग के पृ० ६४ पंक्ती १ में [जीव] धातु का अर्थ प्राण धारण करना है। और पृ० १५७ में [प्राणेन] धातु का अर्थ [श्वांस का चलना] है इन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि जो कोई श्वांस लेता है वही जीव है वृक्ष बिचारा श्वांस कैसे ले उसके कोई नियमपूर्वक छिद्र तो है ही नहीं इससे इससे वह जड़ हैं चेतन नहीं। देखो छोटे २ जीव भी अपने शरीर वा अपने बच्चों से प्रीतिपूर्वक प्रेम रखते हैं वृक्षों में यह गुण नहीं हैं इससे वृक्ष निर्जीव है। देखों इसमें प्रमाण भी हे। उ० ३।६६।वृक्षः कृत्सम्॥ अर्था-वृक्ष जाति प्रीति हीन हैं।

इति दूसरी लहर समाप्त ॥२॥

तीसरी लहर प्रारम्भ ॥३॥

अथ वेदाङ्गप्रकाश भाग ८। पृ० ८२ सू० ४४१

"अवयवेव प्राण्योषधिवृक्षेभ्यः" ४४१ ॥ इस सूत्र में वृक्ष अ-प्राणी व जड़ माने हैं।

अर्थ-(प्राणी) अर्थात् तीतर+मोर+वृक्ष का अर्थ वृक्ष ही हैं औषधि का अर्थ लोग वृक्ष है अगर वृक्ष सजीव होते तो उनका भी अर्थ प्राणि शब्द से ही होता। स्वामीजीका अर्थ व लघुकौमुदी वाले जितने भी आजतक धरती पर पण्डितगण हुए हैं इन सबकी इस विषयमें एक राय है सूत्र के कर्त्ता पाणिनि महर्षि जी ने वेद के आशय लेकर हो इस सूत्र को रचा है और उनका कहा प्रमाण है आर्य और पुराणिक दोनों को स्वा० जी का अर्थ विकारर और अवयव अर्थ में प्राणी औषधि और वृक्षवाची प्राति पदिकोंसे यथाविहित प्रत्यय ही परन्तु प्राणीवाची शब्दों से इसी प्रकरण में आगे अञ् कहेंगे जैसे "कपीतस्यविकारोउवयवो वा कापोतः। तैतिरः" ओषधिवाची "लवङ्गस्य विकारोऽवयव वा लावङ्गम्" देवदारवम्। "निवेरथा विकारोऽवयव वा नैवेश्यम्" वृक्षवाची खदिरस्य। "विकारोऽवयव वा खादिरम्" बबुरम् कारीरं काण्डम् कारीरं भस्म। इत्यादि ॥४४१॥

देखो प्राणी शब्द से कापोत। मायूरः, तैतिरः आदि पक्षी का अर्थ किया है वृक्षबेल प्राणी नहीं है इसीसे उनका अर्थ प्रथक है।

प्राणिरजतादिभ्योऽञु म० ८ पृ० ८३। सू० ४४५

यह अण् का अपवाद है। षष्ठसमर्थ प्राणिवाची और रजतादि प्रतिपादियों से अञु प्रत्य हो विकार और अवयव अर्थों में। प्राणी। कपोतस्य विकारः कापोतम्, मोयुरम्, तैतिरम्, रजतादि, राजतम् सैसम्, लौहम् इत्यादि ४४५॥ इस सूत्र के लिखने में मेरा यह अभिप्राय है कि जैसे इसमें सोना, लोहा शीशा आदि धातु

जड़ है ऐसे ही उपरोक्त सूत्र में भी वृक्षादि बेल जड़ है दोनों लोहा वा वृक्ष एक समान जड़ दिखाने के लिये यह सूत्र मैंने लिखा है ।

वा० नीलोदौषधौ ॥७२ पृ० १५ में

नील शब्द से ओषधि अर्थ में भी ङीष प्रत्यय हों । जैसे नीली ओषधि ॥ यह सूत्र नीचे वाले मिलाना ।

"वा० प्राणिनि च" ॥७३॥ स्वामी जी प्राणी अर्थ में भी नील शब्द से ङीष प्रत्यय होवे जैसे नीली गो, नील बड़वा, नीलगवयी, इत्यादि । यह वारतिक सूत्र दोनों महर्षि कात्यायन जी के रचित हैं यह भी प्राणि अप्राणियोंकी सनद के लिये रखे गये हैं कि वैदिकर्षि मुनि लोग सब ही वृक्षादिकोंको जड़ मानते थे ।

मन्यकर्मण्यनादरेविभाषाऽप्राणिषु ६४ भा०४पृ० २५

इस सूत्र में मन्य निर्देश दिवादि गण के अप्राणिवाचीत्वा तुणं मन्ये । त्वां तुणायमन्ये इत्यादि । मैं तुझको तृण के तुल्य मानता हूं ॥ देखो तृण घास आदि को अप्राणि कहा है घास भी वृक्षोंमें शुमार है । इसीसे वृक्षादि जड़ हैं ।

अनावादिष्विति वक्तव्यम् ॥६५ भा०४ पृ०२५।

ज० इस सूत्र में अप्राणी को ग्रहण किया है उसके स्थान में वार्तिक रूप अनावादिषु ऐसा न्यास करना चाहिये क्योंकि कहीं २ प्राणीवाची मन्य धातु के कर्म में भी चतुर्थी होती है । जैसे "नत्वां श्वानं मन्य' नत्वां शुने मन्ये इत्यादि । मैं तुझे कुत्ते के समान भी नहीं मानता । टि०—उपरोक्त सूत्र में महामुनि पाणिनि जी ने तृण नाम छोटे वृक्ष का है खुल्लमखुल्ला वृक्ष जाति को अप्राणी लिखा

कर यह जताया कि वृक्ष जाति में जीव नहीं है। इनका लेख सब ही को प्रमाणिक है। फिर दाल नहीं गलती है विरोधवाद वाले की वेद में (सासनानशने) अर्थात खानेवाले चेतन जीववाले चर हैं और नहीं खानेवाले अचर बिना जीव के जड़ हैं।

जम्भा सुहरिन तृण सोमेभ्यः ॥५,४,१२५

॥ भाग ५, पृ० ३६ ॥

सु हरित तृण जम्भा नाम मुख्य दांतो का और खाने योग्य वस्तु का भी है। शोभनो मम्भोऽस्य सुजम्भा देवदतः। हरित जम्भा। तृण जम्भा सोम जम्भा। देखो ये अर्थ अगर वृक्षों में भी जीव पशु पक्षियों के सदृस हैं तो उनके लिये ऐसे कठोर वाक्य हरित जम्भा। तृण जम्भा देवदत खाले ऐसा कड़ा शब्द प्राणियों के लिये नहीं कह सकते सिवाय जड़ के चेतन को कभी भी ऐसे कठोर बचन कह नहीं सकते हैं। देखो छेद्यत्वात् कार्ये जगदपि वृक्ष उच्यते। यह छेदने धातु से वृक्ष शब्द बनता है छेदनो काटा जाए सोही वृक्ष है। उ०३,६६। किन्तु एक नहीं हजारों ही प्रमाण वृक्षों को अप्राणी सिद्ध करते हैं उपरोक्त सूत्र में (मन्य अप्राणीषु) मैं तुझको (तृण) के समान भी नहीं मानता हूं ऐसे ही अनेक हैं और प्रमाण तो एक भी बहुत होता है सत्य के लिये वा पक्ष पात आग्रेयही के लिये चाहे जितना लिखो भी सब निष्फल ही है।

वा० अप्राणि जाते २ चार ज्वादी नाम् ॥

सु० १२५। भा० ८, पृ० २४॥

स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान अप्राणी वाची प्रोति पदकों से उङ् प्रत्यय होवे परन्तु रज्जु आदि प्रीति पदिकों से न हो जैसे अलाबुः

कर्कन्धुः। यहाँ अप्राणि ग्रहण इसलिये है कि ककवाकुः। यह न हो और अरज्वादि ग्रहण इसलिये है कि रज्वाः। हनुः इत्यादि. से ङीष न हो। टि०-अलाबु कर्कन्धु। तूबी को वेल वा+बेर के वृक्ष है। इनको ही अप्राणि बताया है अलाबु तूबी आदि की बेल का नाम है और कर्कन्धु बेरों के वृक्षों को कहते हैं। अब अप्राणी शब्द का अर्थ देखिये जैसा स्वामी जी ने किया हैं व्याकरण की रीति से।

जाति रप्राणि नाम् २,४,६ ॥

प्राणि वर्जित जाति वाची सुबन्तों का द्वन्द्व समास एक बचन हो। आरा शस्त्रि धनुष कुलि शय्या सनम्। जाति रीति किमु नन्दक पाञ्चजन्यौ। अप्राणि नामिति किम् ॥

आरा करौंत, हथियार, खाट, त्रिशत्र धनुष डोरी आदि नाम हैं अब समझ लिया होगा अप्राणी शब्द का अर्थ जो कि खाट विछावना आदि के समान ही वृक्ष भी जड़ है जिसके लिये अप्राणि शब्द आता है वह बिना जोव वाला जड़ पदार्थ है ऐसा जानो जी महाराज। छड़ी की लड़ी और देखिये जीवों के लिये मरना और वृक्षों के लिये सूखना।

(मत्युर्म्) यजु० वेद अ० ३३ म० ४३ ॥ अर्थ मरण धर्म प्राणि मात्र का है देख यह स्वामी जी का किया अर्थ है। य० वेद अ० २३ म० ५६ ॥ में खेतादि में वायु खर खराने वाला व सबको सुखाने वाला इसमें वृक्षों का सूखन लिखा है।

ऊधर्वं शोष पूरो। उणादय भा० १०॥ पृ ४०२ में

अर्थ-वृक्ष ऊपर को मुख खड़े २ सूखते हैं और घड़ा ऊपर को मुख होने से बर्षादि के जल से पूरत अर्थात भरता है। टि०-

इसमें भी वृक्षों का सूखना कहां है मरना नहीं कहां मरते तो जीवधारी है य० ३३, ४३ में देखो ।

स्कन्देश्च स्वाङ्गे । २०७ स्कन्धः २०७ उणा ४।२०७॥

(२०७) स्कन्दे गच्छति चेष्टते शुष्यति व इन तत् स्कन्धों बाहु मूलं वृक्षवयवो वा । अकाराऽन्तो धम् देखो यह स्वामी जी का अर्थ है जो ऊपर लिखा है इसका तात्पर्य यह है कि (स्कन्दते) अर्थात् वृक्ष समूह (गच्छति चेष्टो) वह वृक्ष जाति का धर्म बढ़ना है (येन तत् स्कन्धों) वह वृक्ष जाति [बाहुमूलं वृक्षा वयवो व] वह वृक्ष एक में से अनेक होजाने वाला है जैसे ईख का प्रथम एक अंकुर उत्पन्न होकर फिर उसी से पचास पेड़ बन जाते हैं [अकाराऽन्तों प्ययम्] उस वृक्ष जाति में बहुत प्रकार विस्तार को प्राप्त होकर रस युक्त होती है । [शुषति] अर्थात् सूखने स्वभाव वाली है देखो इस लेख में जीव की गन्ध भी नहीं है सूखने । वाले बनाया है वृक्षादि इतने पर भी न जाने तो खोज कर इस लेख में भी वृक्षों का सूखना कहां है मरना नहीं कहां और ऊपर मैंने वेद मन्त्र से जीवधारियों का मरण धर्म सिद्ध करके दिखाया है कि य० ३३, ४३, ॥ मर्त्यम् ॥ अर्थ मरण धर्म प्राणि मात्र का है ॥ फिर भी नहीं मानते है ।

स्थोणुः ॥३७॥ स्थाणु ॥३७। उणा० ३।३७। पृ० ६६॥

(३७) अर्थ तिष्ठतीति [स्थाणु] शुष्कवृक्षों निश्चलोवा । [शुष्क] शब्द से वृक्ष निर्जीव सिद्ध होते हैं । ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि आप लोगों के विचार को शुद्ध करे और आप पण्डित वा संन्यासी पूज्य पदग्रही सज्जन पक्षपात को दूर करदे यह मेरी प्रार्थना है । छान्दोग्योपनिषद् में भी वृक्षों का सूकना ही

लिखा है वहां भी अजर अमरवाले जीव से मुराद नहीं है नकली जीव का कथन है जो यजुर्वेद अ० १७ म० ३२ में ३ प्रकार के जीव बताये हैं। एक प्रकार के वह जीव हैं जो सब शुभकर्म्म का सेवन करते हैं तात्पर्य यह है कि जो जीव कर्मों को करते हैं और अजर अमर वाले हैं जिनका कभी नाश नहीं होता है दूसरे नाशवान (धनञ्जय) नाम वाले जो पृथवी, वृक्ष, सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि में जीव की जगह काम देते हैं। तीसरे (मेघ) नाम वाले भी नाशवान हैं जो बादल में काम देते हैं। यह तीन प्रकार के जीव हैं जो कोई इनके स्वरूप को समझ लेता है वह व्यक्ति धोखे में नहीं आता है।

इति तीसरी लहर समाप्त ॥३॥

चौथी लहर प्रारम्भ ॥४।

अब जीव और निर्जीव दोनों का प्रादुर्भाव भी देखने के योग्य है। पृ० ८६। भा० १०। वेदाङ्ग प्रकाश।

[रूह] धातु से [रूह] "बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च" बीज की उत्पत्ति और प्रकट होना। रोहति, रुरोह, रुरुहतुः। यह धातु भी अनिट् है। टि० विचार करने की बात है किन्तु इस लेख में जीव की गन्ध मात्र भी नहीं है।

उणादि कोष। पृ० २२ सू० ७३ में [जन्तु] धातु से पद १ में

(जन्तु) धातु से जन्यते शरीरादि धारणेन प्रादुर्भावति स (जन्तु) जीवः। देखो इसमें जीव का प्रादुर्भाव बताया है उपरोक्त (रूह) धातु में जीव का जिकर तक भी नहीं है इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वृक्ष निर्जीव है व्यकरण की

मतानुसार। अब इसके आगे आयुर्वेद के दो प्रमाण और पेश करता हूं ।

स्वादीन्यात्मा मनः कलोदिश्च द्रव्य संग्रहः ।
सेन्द्रियं चतनं द्रव्यानिरिन्द्रिय मचेतनम् ॥

चरक संहिता , अ० १ । सू० ४६ । सूत्र स्थान ।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथवी, आत्मा, मन, काल, दिशा इन सब को द्रव्य कहते हैं। इन्द्रिय वालों को चेतन और इन्द्रिय रहित को अचेतन कहते हैं। अभी चरक संहिता के कर्त्ता की बुद्धि की बराबरी जगदीशचन्द्र बोस नहीं कर सकते पदार्थ विद्या में जो महर्षि चरक जीं ने कथन किया हैं वह यथार्थ है। अब आगे सुश्रुत पृ० ६। सू० १८।

आयुर्वेद शास्त्रेष्ठ सर्वगता च्त्रज्ञानित्यश्च तिर्यग योनि नानुष देवेषु संचरति ॥

सुश्रुत सहितवा शरीर स्थाने अ० १ । सू० १८ में ।

अर्थ—आयुर्वेद शास्त्र के मत में एक देसिय जीव नित्य है वे धर्म्म अधर्म्म के निमत से [तिर्यग] योनि [पशु कीटादि] तथा मनुष्यों देह तथा देव शरीरों में विचरते हैं । महर्षि धन्वन्तरि जी की बुद्धि के सदृस मगलानन्द जी नहीं हैं महर्षि धन्वन्तरि ने तो इन्द्र नाम सूर्य का और वत्रासुर नाम मेघ का दोनों इन्द्रि वा वृत्रासुर का युध कराया है वेद से ये छोटी बुद्धि वाले से नहीं हो सकता । महर्षि धन्वन्तरि जी ने अपने इस कथन में यह दर्शाया है कि कर्म्म से जीव पशु आदि कीट कृमि से आगे वृक्षों में नहीं जाते हैं । यह पदार्थ विद्या के धनी

थे फिर भी इनका कहा हुआ स्वीकार क्यों नहीं हो जरूर स्वीकार होना चाहिये।

प्राणो वा यदि अप्राणी। मनु०। अ० ४।११७

स्वामी तुलसीराम मेरठ निवासी का भाष्य।

अर्थ-[प्राणो] जो पशु [अप्राणी] जो शाकादि ऐसा अर्थ किला है अगर कोई वृक्षों में जीव मानने वाला यह कहे कि यह सबजी आदि राधने के शाक के लिये अर्थ किया है तो हम इस पर यह ऐतराज करेंगे कि सबजी आदि भी सबजीवाले दुकानदार की ढेरी में पड़े आलू, घुय्यां, प्याज, अद्रक आदि सब बढ़ते रहते हैं और अन्दर से ही बढ़ते रहते हैं अगर आप लोग उन सब को अन्दर से बढ़ते हुए को बिना जीव के मानते हो तो सिद्ध हो गया कि वृक्ष में जीव नहीं है। जो भी श्लोक मनुस्मृति के वृक्षों में जीव की स्थापना करते हैं वह पीछे से मिला दिये गये हैं इससे वह श्लोक वेद के विरोधी हैं मानने योग्य नहीं। मनु का दूसरा प्रमाण भी देखिये।

ओं बनस्पतिभ्यो नमः। ओं दिवाचरेभ्यो भुतेभ्यो नमः॥ मनु० अ० ३।८८।९० में

श्री स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृ० २८४ में बलिवैश्व देववि०। में देखो।

(ओं वन) "महा वृक्षेभ्यश्च पकार अपणं सदा कार्या मिति बोद्धयतम्।" भावार्थ-ईश्वर के उत्पन्न किए हुए वायु और मेघ आदि सब के पालन के हेतु सब पदार्थ तथा जिनसे अधिक वर्षा और जिनके फलों से जगत् का उपकार होता है उनकी

रक्षा करनी। देखिये इस लेख में वृक्ष वायु मेघ आदि सब पदार्थों का वर्णन किया है। अब आगे जीवों का वर्णन है। देखो

(ओं दिवा) जो दिन में और (ओं नक्तं) जो रात्रि में विचरने वाले प्राणी हैं उनसे उपकार लेना और उनको सुख देना चाहिये। क्या इसमें भी स्पष्ट नहीं है जड़ चेतन वा जीव निर्जीव का निर्णय ऊपर के अर्थ में यह बताया है कि वृक्ष वगैरह की रक्षा करनी माने अपने काम के लिये बाग आदि वाटिका सुख के हेतु उनका बोद्ध करना यह बताया है। और जीवों को प्राणी कहा है परन्तु साथही उनको सुख देना भी कहा है। और यह बात भी ध्यान देने योग्य कि मनु में भी अनेक स्थानो में चरऽचर शब्द आते हैं उनमें वृक्ष पृथ्वी सूर्य आदि जड़ सब एक अर्थ मे रहते हैं अगर वृक्षों को जीव वाले मानोगे तो सूय भूमी भी जीव वाले होजावेंगे फिर भी आपका भूमीआदि को जड़ मानना निर्थक होगा। इससे यही ठक है कि जङ्गम जीव वाले और स्थावर विना जीव वाले जड़ वृक्षादि है और मनुस्मृति का यही लेख मानने योग्य है क्योंकि यह वेद से मिलता है और प्रथम अध्यायका श्लोक ४६ उनचास और कई एक श्लोक आगे यह सब वेद से विरुद्ध हैं इससे मानने योग्य नही है, वेद मे देखो स्पष्ट है कि स्थावर जड़ है। [मायि देवा उभये साध्या इन्द्रजयेष्ठा] अथर्व ७। ७६। २।

अर्थ—ईश्वर कहता है कि सृष्टि में दो प्रकार के देव हैं (इन्द्र ज्येष्ठा) जंगम जीवधारी और जो (साध्या) दूसरे हैं जिनमें हरकतें इन्तजामी वा ईश्वर के नियमरूप करतव्या से सधे हुये स्थावर भूमि वृक्ष पर्वत आदि है। (स्तियानामः) ऋग्वेद ६।

४३ । २१ ॥ संहताना स्थावर+जंगम प्राण यप्राणी नाम । भावार्थ नहीं चलने वाले अप्राणि और चलने वाले प्राणि है। क्या इस लेख से यह नहीं सिद्ध होता कि वृक्ष निर्जीव है किन्तु होता है

यत्किञ्चेदं प्राणी जंगम च पतीत्र च यच्च स्थावर सर्व ॥ ऐतरेय उपनिषद् अ० ५,३

अर्थ (सर्व) जड़ चेतन दो प्रकार की सृष्टि जङ्गम और स्थावर व जीवधारी और निर्जीव-मूल मन्त्र में जङ्गमों को प्राणि कहां है। अगर कोई कहां कि स्थावर जङ्गम दोनों के लिये प्राणि शब्द आया है तो नर्क यह है कि स्थावर में तो दिवार आदि मकान पत्थर सब ही जीव होजाये और इस पद का रचिता पागल समझा जायगा। इससे यह जानना चाहिये कि प्राणि जङ्गम पदार्थ है और स्थावर जड़ अप्राणि है। देखो आर्य्य भिविनय प्रथम भाग का मन्त्र ५३ ॥

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो । हे :मनुष्यो जो सब जगत् का [स्थावर] जड़ अप्राणी का और [प्राणतः] चेतना वाले जगत् का [पति] अधिष्ठाता और पालक है। देखो इस लेख का चेहरा वृक्ष को जड़ अप्राणि का खिताब देना है। स्वामी मगलानन्द जी कहते हैं कि यह मन्त्र मेरे पक्ष में हैं जगत् प्राणते दोनों शब्द स्वतन्त्र हैं। देखिये यह मन्त्र वेद में यों है।

यो विश्वस्थ जगत् प्राणतस्पतिर्यो ऋग्वेद १, १०१, ५ ॥

[विश्वस्य] समग्र टि० ये समग्र शब्द जड़ चेतन वा स्थावर जङ्गम दोनों प्रकार के विश्वा के लिये आया है। फिर [जगत् :] जङ्गम रूप [प्राणतः] जीवते जीव समूह का अध

जीवते जीव समूह यह शब्द जंगम प्राणि मात्र के लिये आया है देखो ध्यान पूर्वक ऐसा लेख है।

[विश्वस्य] समग्र [जगत्] जंगम रूप [प्राणतः] जीवते जीव समूह। ये अर्थ है इन तीनों शब्दों का अब आप लोग इस पर विचार करके देखलो कि वृक्ष क्या है ये वही मन्त्र है जो श्री स्वामी दर्शनानन्द जी ने पं० गणपति शर्मा जी के पेश किया था वृक्षों के लिये निर्जीव होने मे और पं० जी से इस मन्त्र का उत्तर नहीं दिया गया था जो कोई इसका अभिमान करे तो उनके पुस्तक शास्त्रार्थ में देख लेवें पुस्तक मेरे पास है।

एजत्प्राणन्निमिषच ॥ मुड़क उ० २, २. १। में

पं० बद्रीदत्त जोशी का भाष्य॥ [एजत्] चलने वाले पक्षी [प्राणतु] प्राणवाले मनुष्य पशुआदि। [निमिषतः] निमेषवाले + ऐसा अर्थ किया है। यह निमिषतः वृक्षादि के लिये आया है।

यः प्राणतो निमिषतो। संस्कार विधि। पृ० ६॥ [यः] जो [प्रणतः] प्राण वाले और [निमिषतः] अप्राणि रूप॥ ऐसा अर्थ है अब इसी मन्त्र का अर्थ वेद में ऐसा है।

यः प्राणतो निमिषतो॥ यजुर्वेद अ० २५ म० ११

अर्थ- [प्राणतः] श्वास लेने वाले प्राणि और [निमिषतः] चेष्टा कृत स्थावर वृक्षादि हैं। इसमें पदार्थ व भावार्थ दोनों मिले हुये हैं।

इति चौथी लहर ॥४॥

पांचवीं लहर आरम्भ ॥५॥

[पशवो] अथर्व० का० २ सू० २६+१। में देखिये। भावार्थ

[यशवः] वे पशु गौ आदि व मनुष्यादि प्राणी है [भावार्थ] है+इस सुक्त में [पशु] शब्द का अर्थ गौ आदि और सब प्राणी मात्र के हैं। [पशु] व्यक्त बाणी वाले और अव्यक्त बाणी वाले है। निरु० ११।२९ ॥ [पशु] शब्द प्राणीमात्र के अर्थ में प्रायः वेद में आया है जैसे-

त्वमोशिषे पसु नाँ ये जाता उत वा ये जनित्रः ॥

तु पृथ्वी के पशुओं [प्राणियों] का राजा है ऐसे ही व्याकरण से भी पशु शब्द सब जीव प्राणिमात्र के लिये दिखाया गया है। अब वह मन्त्र लिखा जावेगा कि जिन मन्त्रों में प्राणि और पशु शब्द से वृक्षादिक वेलों को अलग किया गया है।

ये देवा दिवि ष्ठये पृथिव्यां ये अन्तरीक्ष ओष-धीषु पशुष्व ॥ अथर्व० का० १ सू० ३० म० ३ ॥

भाषार्थ- [देवाः] हे विद्वान महात्माओं [ये] जो तुम [देवि] सूर्य लोक में [ये] जो [पृथिविम] पृथ्वी में [ये] जो [अन्तरिक्षे] आकाश व मध्य लोक में [ओषधिषु] ओष-धियो में [पशुषु] सब जीवों में भावार्थ जो विद्वान् सूर्य विद्या भूमि विद्या वायु विद्यो [ओषधियों] अर्थात् अन्न वृक्ष जड़ी बूटी आदि की विद्या [पशु] अर्थात् सब जीवों की पालन विद्या और जल आदि सब विद्या जान लेनी चाहिये देखो जो इस मन्त्र में [ओषधी] वा [पशु] दोनों शब्द आये हैं [ओषधी] का अर्थ अन्न, वृक्ष, जड़ी, बूटी आदि किया है और [पशुवों] शब्द का अर्थ सब जीवों के लिये आया है। इन अर्थों के होते हुये कौन कह सकता है कि वृक्ष भी जीव है क्योंकि [पशु] शब्द का अर्थ

सब प्राणि मात्र के लिये आया है और वृक्षों को अलग दूर किया है ऐसा मानता है वेद कि वृक्ष जड़ है ।

अन्न अन्नद्याः पशव ॥ अथर्व १२, ५, १० ।

[अन्न] अर्थात् गेहु चने [अन्नद्यः शाक पात [पशु] अर्थात् हाथी घोड़ादि जीव हैं । इसमें भी जीवों से वृक्ष दूर है ।

पशुनुः ओषधोः । अथर्व १५, १४, ११

[पशु] अर्थ जीव जन्तु [ओषधि] अर्थ जो चावल आदि हैं देखो जी जीवधारियों से वृक्ष अलग दूर पृथक २ हैं ।

यस्ते अपसु महिमा यो वनेषु य ओषधीषु पशुषुः

अथर्व० का० १६।३।२ ॥ में

ईश्वर तेरी महिमा [अपसु] जलों में [वनेषु] बनों में य [औषधीषु] औषधियों अन्नसोम लतादि में तेरी महिमा मौजूद [पशशु] तेरी महिमा जीवों में ॥ देखो जीवों से अलग है वृक्ष आदि दूर है जड़ बिना जीव के है ।

औषधीनामः+पशुनामः ॥ का० १६ सू० ३० म० ५ ॥ जब मूल मन्त्रों में ही जड़ चेतन दूर २ है अर्थ-औषधीनामः+सब अन्नों का (पशुनाम्) दो पाये और चौपाये जीवों का है इन सब प्रमाणों से एक बाल बुद्धि बालक को भी सुनाने से वह भी स्पष्ट कह देगा कि वृक्ष जाति निर्जीव है जड़ है । वेद में कंकर मिट्टी धूल आदि के समान वृक्षों को जड़ माना है जैसे देखो ?

शर्करासिकता अश्मानुः औषधयो वीरुधस्तृणाः ।
अभ्राणि विद्युते वर्ष मुचष्टे संश्रिताश्रिता ॥

अथर्व० का० ११ सु० ७ म० २१ ॥

भावार्थ- (शर्करा:) कंकर आदि [सिकता:] बालु [अश्मान:] पत्थर [ओषधय:] औषधें अन्नादि [विरुध:] जड़ी बूटी [तृण] घासे [अभ्राणि] बादल [विद्युत:) विजुली [वर्षम्] बर्सात [संश्रिता] ये सब परस्पर अर्थात् द्वन्द [उच्छिष्टे] शेष [मा० १] (परमात्मा) में [श्रिता:] ठहरे है। (प्र०) वृक्ष और मिट्टी कंकर का अर्थ एक समान प० छेमकरण दास जी का किया नहीं मानते।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का किया हुआ ऐसा अर्थ जैसा उपरोक्त मन्त्र का अर्थ है ऐसा ही देखना चाहते हैं। [उ०] हां ऐसा ही देखलो पर किसी तौर मान तो लो सच्ची बात के मानने में क्या हरज है भले मनुष्य तो सचाई को ढूढ़ते रहते हैं। देखो [मायि देवा उभये] अर्थात् मेरी दो प्रकार की सृष्टि है। एक [साध्या] जो ईश्वर के करतव्या रूप नियम से सधे हुए सूर्य वृक्षादि प्रजा के पालन के हेतु है जेसे कर्ता के साधन से सधी हुई यह घड़ी चलती और घंटा भी बजाती है। ऐसे ही वृक्षों को भी जानों जैसे गमले में एक पेड़ है दीपशिखा-वत् पानी चूसता है तो क्या विशेषता है [दूसरे] जो [इन्द्र जयेष्ठा] अथ जंगम स्थावर में जो दो हैं उनमें जंगम श्रेष्ठ भाग है इन्द्र नाम जीव का है। [जंगम] पदार्थों में है। [मायि देवा उभये] साधया इन्द्र जयेष्ठा। देखो सीधीसी बात हे कि [मेरे] दो प्रकारके देव हैं एक प्राकर के सधे हुए और साधने योग भी हैं दूसरी प्रकार के ज्ञानवान होने से जयष्ट है उन में इन्द्र नाम का जीव मिला हुआ है। और मिट्टी आदि वृक्षों का अर्थ एक समान भी देखो।

अश्मा च में मृत्तिका च में गिरयश्च मे पर्वता

श्च मे सिकताश्च मेः । वनस्यातयश्च मे हिरण्यँ च मेऽयश्च मे श्याम च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ । य० अ० १८ । म० १३ ।

पदार्थ [मे] मेरा [अश्मा] पत्थर च और हीरा आदि रतन +मेरी [मृत्तिका] अच्छी माटी [च] और साधारण माटी [मे] मेरे [गिरयाः] मेघ च और बादल [मे] मेरे [पर्वता] बड़े छोटे पर्वत च और पर्वतों में होने वाले पदार्थ [मे] मेरी [सिकताः] बड़ी बालू च और छोटी २ बालू [मे] मेरे [वनस्पतय] बड़ आदि बृक्ष च और आम आदि बृक्ष [मे] मेरे [हिरणयम्] सब प्रकार का धन [च] तथा चांदी आदि [मे] मेरा [आयः] लोहा च और शस्त्र [मे] मेरा [श्यामम्ः] नीलमणि वा लहसुनिया आदि च और चन्द्रकन्तामणि [मे] मेरा [लोहम्ः] सुवर्ण च और कान्तीसर आदि [मे] मेरा [सीसम्ः] सीसा च और लाख [मे] मेरा [त्रपू] जस्ता च और पीतल आदि ये सब [यज्ञनः] संग करने योग्य व्यवहार से [कल्पन्तामुः] समर्थ हों ।

भावार्थ-मनुष्य लोग पृथिवीस्थ पदार्थों को अच्छी परीक्षा से जान के इनसे रतनादि धातुओं पाकर सब के लिये उपयोग में लावे । यह अर्थ इस से साफ जाहिरातौर से यह सिद्ध हो जाता है कि पत्थर बृक्ष माटी आदि में कोई भेद नहीं हैं एक समान जड़ हैं । अगर बृक्षों में अजर अमर जीव नहीं है और कोई कुदरती शक्ति है तो उस शक्ति का हाल मालूम वेद में जरूर ही होना चाहिये । [उ०] हां है ।

द्वतीयः तृतोयः पिता जनितौषधो नामपां गर्भ व्यद्धात्पुरुत्रा ॥ य० अ० १७-३२ ॥

पदार्थ—[ओषधीनाम्] यव आदि ओषधियो [अपाम्] जलो और प्राणों का [पिता] पालन करने हारा [हि] ही [द्वतीयः] दूसरा अर्थात धनञ्जय तथा जो प्राणों के [गर्भ] गर्भ अर्थात धारण को [व्यद्धात्] विधान करता हैं वह [पुरुत्रा] बहुनों का रक्षक [जनिताः] जलों का धारण करने हारा मेघ [तृतीयः] तीसरा उत्पन्न होता है इस विषय को आप लोग जानो। भावार्थ सब मनुष्यों को योग्य है कि संसार में सब कामों के सेवन करने हारे जोव पहिले हैं और बिजुली अग्नि वायु और सूर्या पृथिवी आदि लोकोंके धारण करने हारे हैं वे दूसरे और मेघ आदि तीसरे हैं। उनमें पहिले जीव अज अर्थात् उत्पन्न नहीं होते और दूसरे तीसरे (उत्पन्न) हुए हैं परन्तु वे भी कारण रूप से नित्य है ऐसा जाने।

टिप्पणि—इस भाष्य में बिजुली, अग्नी, वायु, सूर्य, भूमि, वृक्ष और लोकों के वृक्ष भूमि भी अर्थ में गर्भित हैं इन सब में जो शक्ति जिससे इन सब को जिन्दगी वा जिससे ये हरे भरे रहते हैं वह सृष्टि की आदि में उत्पन्न होती है कोई वृक्षादि में अजर अमर जीव नहीं है, ये बताया है। (प्र०) कोई और मन्त्र भी है इसकी साक्षी का देने वाला। (उ०) हां देखो:—

अविवै नाम देवेतें नांहते परावृता तस्यों रूपेणो में वृक्षा हरिता हरित स्त्रजः ॥ अथ० १०।८।३१

इसका तात्पर्य यह है कि ईश्वर कहता है कि वृक्ष में अजर अमर जीव नहीं है किन्तु एक (अविर्वै) नामक देवता व दिव्य शक्ति है उसी से वृक्ष हरे रहते हैं। पं० क्षेमकरण जी का किया अर्थ यह है।

भावार्थ-(अविः) रक्षक (वै) ही (नाम) नाम (देवता) देवता (दिव्य शक्ति परमात्मा) अमृतेन सत्यज्ञान से (परिवृता) घिरा हुआ (आस्ते) स्थित है (तस्यः) उस (देवता) के (रूपेण) रूप (स्वभाव) से (इमे) यह (हरिताः) हरे (वृक्षा) वृक्ष (हरितः स्रजः) हरे उत्पन्न किये है।

भावार्थः-ज्ञान स्वरूप परमेश्वर सर्व रक्षक प्रसिद्ध है उसी की दया से यह हरे हरे वृक्षादि प्रणियों को फल आदि से सुखदायक होते हैं। मैंजानूं अब तो वृक्षों के निर्जीव होने में किसी प्रकार की भी शङ्का न रही होगी कहो तो ग्रन्थ को बन्द करदूं आगे न बढूं परन्तु और भी देखना चाहो तो और भी देखलो।

साशनाशने। यजु० अ० ३१ म० ४

पदार्थः-संस्कृत में तो ऐसा अर्थ है (शाशनाश्चनशनञ्च) प्राणयप्राणिनो। और प्रकृत भाव ऐसा है (साशनाशने) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों में। भावर्थ यह है कि पूर्वोक्त परमेश्वर चराचर संसार में व्यापक हैं। यह वही मन्त्र हैं जो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृ० १२२ में है।

अब इसमें विचारना यह हैं कि वृक्ष खाने वालों में है कि न खाने वालों में हैं। देखो उणादि कोष पृ० ११६ सू० १४० में (चर) धातु से (चर) (पशुर्वा) जब चर शब्द के अर्थ पशु

के हैं सो वृक्ष पशु नहीं हैं ये तो मैंने ऊपर बहुतसी जगह दर्शाया है कि पशु व वृक्ष पृथक २ हैं। और (चर] धातु से ही खाने के अर्थ भी सिद्ध होते हैं जैसे [चर भक्षणे] और वृक्ष अचरों में शुमार हैं क्योंकि वेद में ऐसे मन्त्र बहुत हैं कि जिनमें वृक्ष वा पशुओं को पृथक २ किया है जैसे औषधीषु पशुषु औषधि के अर्थ वृक्ष समूह के हैं और पशुषु शब्द सब प्राणिमात्र जलचर वा थलचर आदिक के लिये है। और दूसरी बात यह भी है कि खाने वालों में पाचक शक्ति होती है। जिससे खुराक पचकर टट्टी वा पिशाब की हाजत होती है सो वृक्ष में नहीं है तीसरी बात यह है कि खाने के पदार्थ ठोस होते हैं और वृक्ष भी ठोस ही हैं ठोस वस्तु ठोस में नहीं समाता है परन्तु पोल में समाता है जैसे हम पत्थर में नही पड़ सकते और घर में बड़ जाते हैं। तथा जो भोजन खाता है वह भोजन के लिये परिश्रम भी जरूर ही करता है। देखोः-

(साशनाशनेः) भूमिका ऊपर के पृ० १२२ में यदेकमशनेन भोजन करणेन सहवर्तमानं जङ्गमं जोवचेतनादि सहितं जगत्, द्वितीयः मनशन मविद्यवान मशनं भोजनं मस्मिस्त त्पृथिव्यादिकं च यजड़ं जीव सम्बन्ध रहितं जगद्वर्त्तते।

भाषार्थः-ततो विष्वङ् व्यक्रतुः॥ अर्थात् यह नाना प्रकार का जगत उसी पुरुष के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है (साशनान०) सो दो प्रकार का है एक चेतन जो कि भोजनादि के लिये चेष्टा

करता और (जीव) संयुक्त है और दूसरा (अनशन) अर्थात् जो जड़ और भोजन के लिये बना है क्योंकि उसमें ज्ञान ही नहीं है। और अपने आप चेष्टा भी नही कर सकता है यह श्री स्वामी जी का लेख है इसको पढ़कर एक छोटी से छोटी बुद्धिवाला पुरुष भी यह नहीं कहेगा कि वृक्ष में जीव है।

इति पांचवीं लहर ॥५॥

छटी लहर प्रारम्भ ॥६॥

[प्र०] वृक्ष में जीव नहीं है तो उसका प्रादुर्भाव कैसे होता है ? [उ०] जैसे वेद में वर्णन है देखो:-

सोद् क्रामत् सा वनस्पतिना गच्छत्ः ॥

अथर्व० का० ८ सू० १० में परिय ३ म० १ ॥

भावार्थः-विराट ईश्वर शक्ति का प्रादुर्भाव वृक्ष आदि पदार्थों में है। तात्पर्य यह हैं कि अनादि अज जीव वृक्षादि में नहीं है परन्तु एक उत्पन्न शक्ति हे जो ईश्वर की कृपा से प्राणियों के पालन हेतु रचे हैं।

जगतस्थाः ॥ ऋग्वेद म० २ सू० २७ म० ४ ॥

पदार्थः-(जगत्) जङ्गम् (स्थाः) स्थावरम् (देवाः) सूर्यादय इव विद्वांसः (विश्वस्य) (भुवनस्य) नियासाधिकरणस्य स्थावरस्य (जगतः) प्राणिसमुदायस्य च (गोपाः) रक्षकः ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो [जगत्] चर और [स्थाः] अचर को [धारन्तः] धारण करते हुए [विश्वस्यः] सब [भुवनस्य] निवास के आधार स्थावर और प्राणिमात्र [जंगम] [जगत्]

के (गोपाः) रक्षक। अब आप विचारिये कि प्राणिमात्र जंगम यह पुकार सारे आर्य शास्त्रों में मची है फिर भी इसके विरुद्ध में लेखनी उठाई जा रही है। इस लेख में स्थावरों को निवास के आधार बताया है क्यो कि भूमि पर्वत वृक्ष यही आधार रूप हैं और इन हो में जीवों का वास है।

जगतुः स्थातुः । म० ४ सू० ५३ म० ६ ।

पदार्थ-(जगतुः) जंगम अर्थात् चेतनता युक्त और (स्थातुः) स्थिर स्थावर अर्थात् नहीं चलने फिरने वाले वृक्ष आदि जगत् के पालक ईश्वर हैं। देखो स्वामी जी वृक्षों के पीछे पड़े हुये हैं निर्जीव सिद्ध कर रहे हैं। आगे और भी देखिये इस में खोलकर स्पष्ट कर दिया है।

स्तियानाम् । ऋग्वेद म० ६ सू० ४४ म० २१

पदार्थ-संहतानां स्थावर + जङ्गमनां प्राणयप्राणिनामः।

पदार्थ-स्तियानामः। मिले हुए नहीं चलने वाले अप्राणि और चलने वाले प्राणि है। उन के रक्षक ईश्वर है। मिले हुए प्राण उदान को कहां है वृक्ष मे मिले हुए प्राण सांस लेना उदान उर्ध्व क्रिया इन्द्रियों से ज्ञान ग्रहण करना आदि से जड़ वृक्ष रहित है। मिले हुए शब्द का अर्थ देखो य० वेद अ० ३३। ४६। में। (प्र०) अथर्व० १। ३२। १ में पं० क्षेमकरणदास जी ने वृक्ष का सांस लेना:लिखा है।

पोप्रुथद्भिः शाश्वसद्भिः। म० १ सू ३० म० १६। वृक्ष श्वास नहीं लेते देखो।

पदार्थ-(पोप्रुथद्भिः) अर्थ स्थूल जो कि अजर है उन कार्य रूपी पदार्थों से। (शाश्वसद्भिः) जीव तथा अतिप्रसंशनीय प्राण

वाले चर वा । देखो इस मन्त्र के मूल पद में ही शाश्व पद से चरों का ग्रहण है और चर चलने वाले ही सांस भी लेते हैं वृक्षों का अर्थ भूमि के साथ रहता है । ऐसा जानों । सांस लेने के लिये मुंह नाक आदिक छिद्रों की भीं जरूरत है वृक्ष विचारे के छिद्र कहां हैं पेट में धोकनी से श्वास चलता है ऐसे तो मैं भी कहदूं कि दीपक सांस लेता है यह बात भी ठीक है वेद में लिखा है कि प्राणि प्राणेन । इसका अर्थ है कि जो श्वास प्रश्वास लेता है । वही जीवधारी है जो सांस नहीं लेते हैं वह जड़ पदार्थ हैं। (प्राणन्ति प्राणेन) इसी प्राणेन धातु से जीव शब्द बनता है किन्तु प्राणि शब्द मुख्य और जीव शब्द गौण है परन्तु प्राणन्ति शब्द के अर्थ दोनों होते हैं मुख्य वा गौण। देखो नीचे लिखे मन्त्र में भी वृक्ष को सांस लेना आदि क्रिया का निषेध है ।

यः प्राणतेः निनिषतोः य० वेद अ० २५ म० ११

अर्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (यः) जो सूर्य (प्रतः) श्वांस लेते हुए (प्राणि) जङ्गम मनुष्यादि जगत् और (निमिषतः) चेष्टा करते हुए स्थावर वृक्ष आदि संसार का पालन वा प्रकाश करने वाला एक ईश्वर है। पदार्थ+भावार्थ दोनों मिले हुए हैं। संस्कार विधि पृ० ६ में इस मन्त्र का अर्थ यों है कि (प्रणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणि रूप । इस से यह सिद्ध होता है कि जङ्गम मनुष्यादि जीव हैं और स्थावर वृक्षादि जड़ हैं।

यो विश्वस्य जगतु प्राणतस्पतिर्यो ।

आर्याभिविनय । १ । ४४ ॥

हे मनुष्यो जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणि का और

(प्राणतः . चेतना वाले जगत् का (पतिः) अधिष्ठाता और पालक है। जरा इस पर भी श्रुति करिये पक्षपात दूर कर के। अगर वृक्ष में अभिमानि जीव आप मानोंगे तो आप के आर्य शास्त्र रूपी तरका पता २ छिन्न भिन्न हो जायगा क्यों कि वृक्ष मे जीव के सिद्ध करने वाले लेख इन ग्रन्थों में नहीं है वृक्ष को जड़ बनाने वाले तो लेख अनेक हैं। इससे आप धोखे में मत आइये । और देखो यजु० वेद अ० २२ म० २६ में ऐसा लिखा है कि अर्थ (जङ्गम) जीवों और स्थावर जड़ पदार्थों के लिये (स्वाहा) इस लेख से भी वृक्ष विना जीव के ही सिद्ध होते हैं। [प्र०] हम प्राणि शब्द की मोख्यता और जीव शब्द की गोणता देखना चाहते हैं। [उ०] हां देखोः—

मरूषं तस्थुष। य० वेद अ० २३ म० ५

अर्थ–जो पुरुष (परि) सब ओर से (तस्थुषः) स्थावर जीवों को (चरन्तम्) प्राप्त होते हुए बिजुली के समान वर्तमान (अरुषम्:) प्राणियों के मर्मस्थल जिन में पीड़ा होने से प्राण का वियोग शीघ्र हो जाता है उन स्थानों की ईश्वर रक्षा करता है । इस भाष्य में (प्राणि) शब्द मुख्य और जीव शब्द गौण है। जीव शब्द निर्जीव पदार्थों के लिये भी आया करते हैं जैसे कोई कहा करते है कि यह कपड़ा जीवदार है इस खाट की पाटी व बाही जीदार है। कभी स्थावरों के लिये जीव शब्द देखकर घबराहट में पड़े भ्रान्ति के साथ विचार से काम लेना समझ में आते ही तबियत खुश हो जावेगी आपको।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। य० ७। ४२

अर्थ—(जगतः) जङ्गम प्राणि और (तिस्थुषः) स्थावर संसारी पदार्थ । इन सब बातों से ये भली भांति सिद्ध होत हैं कि आर्य शैली में वृक्षादि स्थावर जानि जड़ माने गये हैं । इसको कोई भी नहीं बदल सकता है । संसारी पदार्थ जड़ वर्तने की वस्तु निर्जीव जीव से रहित जीवों से अलग कर दिये जीवों में नहीं गिने हैं ।

जगतः तस्थुषः । य० अ० २७ । ३५ में (जगतः) जङ्गमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्य । दूसरा अर्थ (जगतः) चर [तस्थुषः] अचर । इसमें भी सब के समान ही अर्थ है जब मूल मन्त्र में जगत् शब्द जागते हुए जीवधारी हाथी से लेकर कीट पतङ्गादि तक का वाची है । और [तस्थुषः] जड़ समुदाय का वाची है फिर झगड़ा क्या है जीव तो चंचलता युक्त है उसको तो सहज में ही पक्षान सकता हं आदमी । क्यों कि जीव अपने शरीर को हिलाता रहता है वही जीव है जीव के [गुण] ज्ञान प्रयत्न दो सुभाविक हैं ।

आपो अग्रे दिव्या ओषधयः ॥ अथर्व० का० ८ सू० ७ म० ३ ॥ इसका अर्थ [अग्रमः] पहिले [दिव्याः] दिव्या गुणवाले [आपः] जल और [ओषधयः] ओषधियों अन्न आदि पदार्थ । दूसरा अर्थ यह है कि परमेश्वर ने सृष्टि की आदि में जल अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न कर के प्राणियों की रक्षा की है ।

देखिये जीवों से पहिले सब दिन अन्न जल पैदा होते हैं । इस से सिद्ध होता है कि जी । कर्म से गिरकर वृक्ष आदि नहीं हो सकता है । महर्षि श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जन्म शताब्दी मथुरा पुरी में मै ने श्री स्वामी मगलानन्द जी से ये ही प्रश्न किया था कि स्वामी जी आप वृक्षों को जीवधारी

मानते हो पर यह बताइये कि सब दिन वृक्ष जीवों से पहिले पृथिवी चन्द्र सूर्य आदि की साथ ही पैदा होते हैं। तो जीव कब कर्म कर्ता है और कब कर्म से गिर कर वृक्ष कब बनता है। मगलानन्द जी से इस का कुछ भी उत्तर नहीं आया एक वार तो हंस पड़े फिर हंसकर मेरी पीठ ठोकने लगे मैं ने और भी जोर दिया तो पीछे स्वामी मगलानन्द जी काले पीले होने लगे। मैं ने कहा कि जिसका आप से उत्तर नहीं देन बनता है उसको क्यों लिख दिया। बस इतने पर आप चलते हुए।

इति छटी लहर ॥ ६ ॥

सातवीं लहर प्रारम्भ ॥ ७ ॥

परिभूतम् आयनू ताः सप्त गृध्राः। अथर्व० क० ८ सू० ९ मन्त्र १८।

अर्थ-त्वचा, नेत्र, कान जिह्वा, नाक, मन और बुद्धी यह विषय प्रकाश करने वाली इद्रियों की सूक्ष्म शक्तियां (भुनम् पारि) प्रत्यक प्राणी के साथ है॥ वृक्ष में जीव मानने वाले यह कहां करते हैं कि वृक्ष का जीव सुषप्ति की हालत में है परन्तु जिसमें उपरोक्त सात शक्तियां हों तो वह सारी हान नहीं सोता क्योंकि जीव चंचलता युक्त है थोड़ी देरतक मूर्छत व निद्रादि नशे के बस तो जरूर होजाता है जन्म भर के लिये सोना निर्जीव पदार्थ में हो सकता है सजीव में नहीं सजीव तो कभी सोता कभी झट से जाग जाते हैं ऐसे सजीव और सारी आयु भर सोने वाले जड़ व निर्जीव पदार्थ है। जब आदमी मर जाता है तो नातेदार कहते हैं कि ये तो सब दिन के लिये सो गया है। भला कोई भी बुद्धि-

मान ऐसा होगा कि जिसमें वह सात इद्रिय मन आदि हो और वह सारी आयु भर सोता रहा है कभी नहीं ऐसा हो सकता बिना जाग्रत के सुषुप्ति होती ही नहीं जाग्रत की अपेक्षा से स्वप्न सुषप्ति दोनों अवस्था होती हैं। (प्र०) वृक्ष में ज्ञान की गति तो जरूर ही होगी।

अव्यानतुः व्यनतुः अथर्व ५, २, २ इसका अर्थ

(अव्यनतुः) स्थावर वृक्षादि गति सुन्य है और (व्यनुतः) जंगम मनुष्यादि गति शील है। देखो ज्ञान का आधार इन्द्रिय है जब वृक्ष के इद्रिय ही नहीं तो फिर ज्ञान की गति कैसे हो सकती है जब वेद ही स्थावर को गति सुन मानता है तो फिर किसी की भी दाल नहीं गलती है। और प्रत्यक्ष में भो वृक्ष हवा से ही हिलते हैं नहीं तो नहीं हिलते हैं इससे सिद्ध है कि वृक्ष गति रहित है। वृक्ष में ज्ञान तो है देखो जब पानी नहीं मिलता है तब सूखने लगते हैं। यह ज्ञान नहीं क्या है (उ०) ऐसी घटना तो ज्ञान सून्य पदार्थों में होती रहती है। देखो जब दिये में तेल नहीं रहता है तब दिया वा दिये की लौ वलहीन होकर सूखने लगती है और जब तेल मिलता है तो फिरसे दिया हरा होकर रोशनी देने में समर्थ होजाता है इससे क्या सिद्ध हुआ कि ऐसी बातें तो जीव रहित पदर्थों में होती है। जो पुरुष वृक्षों को खाने वालों में सुमार करते है वह भूल में हैं क्योंकि भोजन उसको कहते हैं जो मुंह से खाया जाता है और पेट में जठर अग्नि से पच कर गुदा इद्रिय के मारिग से मल मूत्रादि रूप से पुनः बाहिर आता है दिवे त्व पेड़ में ये गुण नहीं है।

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षड्यामा ऋषियो देवजा इतिः अथर्व का ६, सु० ६ म० १६ ।

भाषार्थ- (साकंजानामुः) एक साथ उत्पन्न हुओं में से (सप्तथमुः) सातवे [जीवात्मा] को (एक जमु) अकेले उत्पन्न हुआ वे [तत्वदर्शी] बताते है और कि [षट्] छह । कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा नाशिका पांच ज्ञाने इन्द्रिय और मन] [इतु] ही (यमः) नियम में चलाने वाले (ऋषिय) अपने विषयों को देखने वाली इन्द्रिय (देवजाः) देव गति शील जीवात्मा के साथ उत्पन्न होने वाले हैं ।

भाषार्थ—कर्म फल के अनुसार अकेले जीवात्मा के साथ सब इद्रियं उत्पन्न होकर उसके बस रहकर अनेक विषयों का प्रकाशिक करती हैं यह जीवों की उत्पति का लक्षण किया है यह लक्षण वृक्षादि में नहीं घटता है क्योंकि इस लक्षण में ६ ज्ञान इन्द्रिय और सतावे जीव का वर्णन है । यह लक्षण जड़ों में नहीं घटता वृक्ष आदि जड़ पदार्थों की उत्पत्ति आगे दिखावेंगे ।

षट् यमा एक एक जाः का० १० सु० ८ म० ५

[षट्] छह [यमाः] यम नियम से चलने चलाने वाले पाँच ज्ञाने इन्द्रिय और एक मन (एकः) एक (जीवात्मा) (एकजः) [अपने कर्मानुसार] अकेला उत्पन्न होने वाला हैं जो मनुष्य भर्म बस होकर ये कहते है कि एकही वृक्ष के अभिमानी जीव बहुत से होते हैं वह इन दोनों मन्त्रों से शिक्षा लेकर तत्वदर्शी बने । एकः जमुः षट्ः । ये एक और मन्त्र है यह भी शरीर में एकही जीव का कथन करता है ।

ऋगुवेद म० ६ सू० १ म० ४ में भी यही कथित है कि एक शरीरमें एक ही जीवात्मा होता है अधिक नहीं है। अब आगे बिना जीव के जड़ वृक्षों की उत्पति का नक्शा खींचा जाता है जैसा व्याकरण से ऊपर दर्शाया था ऐसाही वेद में भी देख लो।

पञ्चः राज्यानिः वीरुधः ॥ अथर्व० का०११ सू०६ म०१५ ॥

भावार्थ-[वीरुधामुः] जड़ी बूटियों [सोमश्रष्ठोनि] सोम ओषधि विषेय को प्रधान रखने वाले [पञ्चः] पांच [पता डंडी फूल फल और जड़ रूप] यह अर्थ पं० छमकरण दास जी का किया हुआ है। ध्यान देकर देखो इस अर्थ से क्या टपकता है। मूल मन्त्र में ही बिना जीव की झलक मारती है। पाँच वस्तु बताई हैं जीव की तो गन्ध मात्रा भी नहीं है वृक्षों में जीव के मानने वाले इस मन्त्र को जपा करें।

यस्या मन्न व्राहियवौ यस्या इमाः पञ्चे कृष्टयः ।

का० १२ सु० १ म० ४२

धान, जौ आदि के वृक्ष पाँच वस्तुवों से बने हैं। वह पांच वस्तु यह हैं जल, अग्नि, वायु, भूमि व आकाश यहीं पांच भूतों से वृक्ष की हस्ति कायम है। कोई वृक्ष में छठा जीवात्मा नहीं है ऐसा समझना चाहिये। ऊपर जीवों की पैदायश देख चुके हो।

उदकत्मा औषधियाः अथर्व० ८, ७, ६

वृक्षों का जीवात्मा [उदक] जल है यह इस मन्त्र के आशय हैं। कि जैसे दिवे का आत्मा तेल है ऐसे ही वृक्ष का जीवात्मा पानी है। ऋग्वेद पृ० ५६६ सु०१६४ म० ७ ॥ में वृक्ष पदु से पानी

पीते हैं। क्या इन सब बात से ये नहीं सिद्ध होता है कि वृक्षादि जड़ है। पुनः जीवों के लक्षण का प्रकाश देखो।

इदं सर्वमात्मा वद्यत् प्राणन्निमवन्च यतु ॥
अथर्व० का० १० सु० ८ म० २

अर्थ—परमेश्व मे [इदमु] यह [सवम्] सब [आत्मान्नतु] आत्मा वाला [जगत्] वर्तमान है। [यत्] जो कुछ [प्राणन] श्वास लेता हुआ चेतन है। [च] और [यातु] जो [निमिषतुः] आंख मुदे हुये जड़ हैं। तात्पर्य हैं कि इन्द्रियों से रहित है वृक्षादि जड़ बिना जीव के है इसमें भी आत्मा वाला जगत श्वांस लेता हुआ चेतन है ये लेख सिद्ध कर रहा है कि सास लेने वाले ही जीव है।

प्राण ह सर्वोयेश्वरो यच प्राणाति यचनः ॥

यह दोनों अर्थ मिले हुये है [प्राणतिः] श्वांस लेते हुये चर [च] और जो [नः] नहीं श्वाँस लेते हुये अचर यह दो प्रकार का [जगत्] ईश्वर के आधार है। इस लेख मे भी [चर] चलने वाले व खाने वाले मनुष्य से लेकर कीट कृमी तक जीव है। और (अचर) भोजन व गवन नहीं करने वाले वृक्षादि जड़ पदार्थ जो श्वाँस नहीं लेते हैं सो बिना जीव के ईश्वर की कृपा से हरे हैं।

प्राणतिः प्राणेनः। अथर्व० ११ ७ २२।

अर्थः—(प्राणेन) प्राण (श्वास प्रश्वास) के सब (प्राणतिः) जीता है। इससे यही सार निकलता हैं कि जो सांस लेते हैं वही जीवधारी हैं और इसका उलटा जो सांस नहीं लेते वह निर्जीव हैं। "एकपाद् द्विपदो।" अथर्व० १३।२।२७ ॥ (एकदातुः)

एक रस व्यापक परमेश्वर (द्वि पदः) दो प्रकार की स्थिति वाले जङ्गम+स्थावर (जगत्) में। वह दो प्रकार की स्थिति कौनसी हैं कृपा करके बताइये ; है कौनसी जड़ वा चेतन है। या यों कहो कि जीव और निर्जीव है।

द्वे रूपे कृणुतेः। अथर्व० १३ २।२८ ॥

अर्थः-ईश्वर ने (द्वे रूपे) दो रूप जड़ और चेतन। यह वही दो रूप ऊपर के मन्त्रों में बताया है। जीवधारी और निर्जीत जो है।

"द्वे रूपेकृणुतेः।" अथर्व० का० १३ सू० २ म० ४२ ॥

अर्थः-[दो रूपः] जङ्गमस्थावर [कृणुतेः] ईश्वर बनाता है। वह भी ऊपर के मन्त्र में जिनको जड़ वा चेतन कहा है उनही को इसमें जंगम व स्थावर नाम से कहा है दोनों तीनों मन्त्रों में एक ही बात है। वृक्षादि स्थावर जड़ बिना जीव के हैं और मनुष्यादि जंगम चेतनतायुक्त जीवधारी विचारशील ज्ञानयुक्त है।

स प्रजाभ्य वि पश्यति यच्च प्राणतिः यच्च नः।

अथर्व० १३।४।११ ॥

अर्थः- [सः] वह [परमेश्वर] [प्रजाभ्य] उत्पन्न जीवों के हित के लिये उस सब को [विः] विविध प्रकार [पश्यतिः] देखता है [यत्] जो [प्राणति] श्वांस लेता है [च] और [यत्] जो (नः) नहीं श्वांस लेता है। इसकी पूर्ति ऐसे है कि सांस लेनेवाले जीवधारी जङ्गम हैं और नहीं सांस लेनेवाले जड़ जीव से रहित स्थावर वृक्षादि है ऐसा सिद्ध होता है। जो पढ़ा लिखा इस सिद्धान्त को नहीं जानता वह धरनी पर भार रूप हैं। लो और लोः

यच्च प्राणति यच्च नः। अथर्व० १३।४।१६ ॥

अथः--जङ्गम जीवधारी सांस लेने वाले। और स्थावर निर्जीव नहीं सांस लेनेवाले वृक्षादि बेल जड़ हैं अमर बेल टुकड़े होने पर भी बढ़ती रहती है।

आप तो आर्य समाज के प्लेटफार्म पे खड़े होकर औरों को समझाते थे कि हमारे यहां वृक्षों में जीव पहिले ही से माना हुआ वेद में है। अगर आपने वेद पढ़ा होता तो ऐसा अनर्थ कभी भी न कहते। क्योंकि वेद स्थावर वृक्षादिको जड़ मानता।

विषणां बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः ॥ अथर्व० का० १७ सू० १ म० ६।७।८।६ १०।११।१२।१३।१४ १५।१६।१७ १८।१६ ॥ और मन्त्र २४ भी इसी नमूने का है। इन सबका अर्थ ऐसा है कि हे (ईश्वर) (विश्वरूप) रूपवाले पदार्थ चांदी सोना वृक्षादि से हमने भरपूर करिये। और [पशुभिः] मनुष्य गाय भैंस बैल घोड़े आदि जीवों से हमें भरपूर करिये इस काण्ड में वृक्ष जाति का खुलासा करदिया है कि जड़ों में सुमार है। फले न फूले बेत चाहे बारिध आमृथ वर्षे, मूरख हृदय न चेत चाहे गुरू मिले विरञ्च सम। अर्थः--आकाश के फूल नहीं लगते चाहे जितनी वर्षा हों और मूरख कभी पढ़ नहीं सकता चाहे उसे ब्रह्मा ही पढ़ावे।

त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशुनः। ऋ० म० १ सू० १८८ म० ६॥ ये स्वामी दयानन्द जी का लेख है। अर्थः--जगदीश्वर ने इन्द्रिय से परे जो अति सूक्ष्म कारण से चित्र विचित्र सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, औषधि और मनुष्य के शरीरावयवादि वस्तु बनाई हैं।

देखो इस भाष्य में श्री स्वामी जी ने वृक्षों को सूर्य आदि जड़ पदार्थों के साथ में मिलाया है और मनुष्यादि के शरीरावयवादि प्रकृति के बने हुए बताये हैं और सूर्य औषधिय अर्थात् वृक्षादि बेल को जड़ों में शुमार किया है।

[प्र०] आपका दावा है कि [पशु] शब्द से प्राणिमात्र सब जीवों का अर्थ होता है तो हमको भी दिखाओ कि वेद में किस स्थान में ऐसा लिखा है (उ०] देखो अथर्व० का० १६ सू० ६ मन्त्र १४ ॥ में ऐसा लेख है (पशुनः) शब्द का अर्थ मनुष्य, सिंह, बाघ, गऊ, बैल, तथा गिद्ध, चील, तोता, मैना, कीट, पतंग आदि जीव ईश्वर ने बनाये हैं ये देखो [पशुः] शब्द से सब जीवों की उत्पत्ति होनी है। और वृक्ष जड़ होने के कारण से जीवों में नहीं गिने जाते हैं। जीवों से दूर रहते हैं। फिर भी वृक्ष जड़ बिना जीव के क्यों नहीं माने जाते हैं।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पुरुष सुक्त के म० ६ ॥ में भी (पशु (शब्द का अर्थ सब जीवों के लिये किया गया है। सारे वेद में यह बात स्पष्ट है कि [पशुषुः औषधयःषुः] फिर भी शङ्का नहीं जाती ऐसे भ्रम में पड़े हैं कि जगदीशचन्द्र बोस को ही गुरु मान बैठे हैं।

इति सातवीं लहर ॥ ७ ॥

आठवीं लहर प्रारम्भ ॥ ८ ॥

(प्र०) ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म किन्हीं को हरिण गाय आदि पशु किन्ही को वृक्षादि कृमि कीट पतङ्गादि जन्म दिये हैं। स० प्र० पृ० २३५ यह प्रक्षित हैं।

देखो स्वामी जी वृक्षों में अभिमानी जीव मानते थे। (उ०) आप लोगों का समझा हुआ अर्थ वेद विरुद्ध होने से मान नहीं सकते हैं। इस लेख से वृक्ष में जीव नहीं सिद्ध होता क्यों कि वृक्ष के लिये (किन्ही को) शब्द ननीं आया है। यह कमी है इस लेख में। इसके लिये विचार की जरूरत है। जरा दृढ़ होकर विचार करिये समझ में आते ही तबियत खुश वा आनन्दित हो जावेगी। [प्र०] जैसा किन्ही को हरिण गाय आदि पशु किन्ही को वृक्षादि कृमि कीट पतङ्गादि जन्म दिये हैं। बताइये जब लेख एक समान है तो भेद कैसा है। [उ०] आप लोगों को यह लेख एक समान दिखाता है। मुझे तो इस लेख में भेद मालूम होता है। क्यो कि हरिण गाय तो दोनों (जङ्गम) जाति वाले पशु हैं इन के लिये तो एक वार [किन्ही को] शब्द का आना योग्य है और कीट पतङ्ग जङ्गम है वृक्ष स्थावर है इसलिये इन दोनों के लिये एक [किन्ही को] शब्द का आना ठीक नहीं है। [प्र०] तो इस लेख का अर्थ कैसा है [उ०] खाली वृक्षादि शब्द आया है उस के लिये कोई जन्म आदि शब्द नहीं आया। इसका तात्पर्य यह है कि किन्ही को वृक्षादि के कृमि कीट पतङ्गादि जन्म दिये हैं। जो जीव कर्म बस होकर वृक्षों के कीड़े बनेंगे ऐसा अर्थ है। देखो अगर वृक्ष में जीव मानते तो ऐसा लिखते किन्ही को वृक्षादि जन्म किन्ही को कृमि कीट पतङ्गादि जन्म ऐसे होता तो सब ही को मानना पड़ता। परन्तु ऐसा है नहीं इस से वृक्ष का जीव होना नहीं सिद्ध होता है। और एक समान लेख होने से भी अर्थ में भेद होता हैं। देखो स्वामी जी का ही कथन है कि किसी ने कहा कि मचान पुकारते हैं। तो समझने

वाले को चाहिये कि मचान जड़ है वह पुकार नहीं सकते इससे मचान के ऊपर कोई आदमी ही पुकारता हैं । ऐसा जानना चाहिये । दूसरा प्रमाण किसी ने कहा कि इस लाठी को भोजन करादो किन्तु समझने वाले को यह समझना चाहिये कि लाठी तो जड़ होने से खा नहीं सकती है परन्तु लाठी वाले पुरुष को भोजन कराना चाहिये । और भी देखो जो आप कहते हो कि एक समान लेख होने से अर्थ भी समान ही होना चाहिये ऐसा ठीक नहीं होता+१ आग २ धुवासा ३ आगरी चौथा गाढ़ीवान । ज्यों २ दमके दामिनी त्यों २ तजये प्राण ।

इस का अर्थ यह हैं कि वर्षात के समय में अग्नि बलहीन हो जाता है इस से कवी ने अग्नि का डरना डर के प्राण का त्याग करना कहा है वस्तुओं में अग्नि जड़ पदार्थ हैं । ऐसे ही वर्षात की मौसम में धुवासा एक वृक्ष होता हैं जो सूख जाता हैं उसका डर के प्राण छोड़ना कहा है । ये धुवासा भी जड़ ही हैं गाड़ी हांकने वाला भी वर्षात में डरता रहता है । कि ÷ कहीं गाड़ी धस न जाय । आगरी जो ईंट पकाने वाला कुम्हार भी डरता है कि आग बुझ न जा । देखो इस लेख में गाड़ी वान और आगरी जो कुम्हार है । इन दोनों का अर्थ तो मुख्य है और आग धुवासा ये दोनों जड़ पदार्थ होने से इनका अर्थ गौण हैं । ऐसा समझना चाहिये । ऐसा ही एक समान लेख के मुख्य व गौण अर्थ होते हैं । विचार से दूध पानी की सकल वा दूध और पानी के गुणों से जानना चाहिये । जीव अपने शरीर को हिलाता है । और वृक्षों में यह गुण नहीं हैं ।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृ० २१६ ॥ में लिखा है कि

नीच गति से जीव पशु, पक्षि, कीट, पतंग बृक्षे आदि का होना। इसका भी यही तात्पर्य है कि बुरे कर्मों के फल भोगने के लिये जीववृक्षादिक में कृमि कीट कीड़े मकौड़े भुनगे कलिये जो बृक्षों में होते हैं। जैसे गूलर आदि के फलों में कृमि कीट सूखे बृक्षों में घुणादि के लिये कहा है। [प्र०] जो स्वामी जीट पतंग वृक्ष आदि का होना कहा तो बृक्ष का नाम क्यों लिखा इससे क्या जरूरत थी जब वृक्ष में अभमानी जीव नहीं मानने थे तो वृक्ष न लिखते। [उ०] यह आर्य शैली है। सब ही आर्य ऋषि मुनि बृक्षों में कीड़े मकौड़े किसी न किसी रूप में लिखते आये हैं। इसी से इन्हों ने भी लिखा है। क्यों कि इतने जीव पृथ्वी में जन्म लेते हैं इन से भी अधिक जो बृक्षादिक काष्ट में जन्म लेते हैं। इससे वृक्षों में जीवों का जाना जन्म लेना जैसे फलों में कीड़े और लकड़ी के घुण आदि कीड़े यह सब लिखने पड़ते हैं। इसी से स्वामी जी ने भी लिखा है देखो प्रकरण पुनर्जन्म मन्त्र ५ [इ स्टती०] इससे पहिला मन्त्र यह है कि।

आयो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरुणि। धास्युर्योनि प्रथम आविवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ५ अथर्व० का ५ सु० १ म० २ भूमिका पृ० २१४

अर्थ विवित्वा धर्नमाचरित स पूर्णवद्विद्वच्छरीरं धृत्वा सुख मेव भूङ्क्ते। तद्वि परीता चरणस्तिर्य्यग्देहं धृत्वा दुःख भागी भवतीत विज्ञेयम।५

दूसरा अर्थ जो वेदोंमें सत्य भाषण करनेकी आज्ञा दी है वैसा ही। (आचिकेत) यथावत् जान के बोलता है और धर्म में (ससाद) यथावत् स्थित रहता है, वह मनुष्य योनि में उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है और जो अधर्माचरण करता है वह अनेक नीच शरीर अर्थात् कीट पतंग पशु आदि के शरीर को धारण करके अनेक दुखों को भोगता है।

देखो इस मन्त्र में पाप वा पुण्य के अनुसार ही फल का भोग करना कहा है।किन्तु वृक्ष का जिकिर तक भी नहीं है। इसमें सब झगड़ा दूर कर दिया है। संस्कृत में (तिर्य्यगदेहं) धृत्वा तिरछे चलने वाले पशु पक्षियों के देहं शरीर को कहा है। देखो यही पुनर्जन्म दोसुर्ती इस मन्त्र के नीचे कृमि पर्यन्त जीव है। ऐसा लेख मिलता देखो पृ० २१६ पन्ती २० में वा पृ० २१७ प० २३॥ में जिसको मैं नीचे लिखता हूं॥

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ८

पातं अ० १ पा० २ सू० ६॥

(स्वरस) योग शास्त्र पतञ्जलिमहामुनिना तद परि भाषक जी वेद व्यासने च पुनर्जन्म सद्भावः प्रति पादितः। या सर्वेषु प्राणिपु जन्मा रभ्य मरण त्रासाख्या प्रवृत्ति दृश्यते तथा पूर्वापर जन्मानि भवन्तीति विज्ञोयते। कुतः। जात मात्र कृमिरपि मरण त्रास मनु भवतिः। कुतः प्राणिमात्रस्य मरण भय दर्शनातु देखो इस लेख में वेद व्यास भी साक्षी हैं और और पतञ्जलि जी जिन को स्वामी दयानन्द जी महामुनि की पदवी देते है देखो इस लेख में पकड़ यह है कि कृमि परियन्त जीवों को मरण भय

होता है। प्राणी मात्र का मरण का डर होता है ऐसा लेख है। अगर वृक्ष में भी जीव होता तो यों कहते कि वृक्ष आदि (स्थिरन्त को मरण भय) होता है किन्तु ऐसा नहीं कहा इससे सिद्ध हुआ कि वृक्ष जीव नहीं हैं परन्तु निर्जीव।

[स्वरस] [सर्वस्य प्रा०] हर एक प्राणियों की यह इच्छा नित्य देखने में आती है कि [भूमासमिति] अर्थात् मैं सदैव सुखी बना रहूं, मरुं नहीं यह अभिनिवेश क्लेश कहलाता है जो कि कृमि पर्यन्त सब जीवों को मरने का भय है। इससे ये सिद्ध हुआ वह वृक्ष आदि के कृमि कीट पतंग जीव होते हैं वृक्षों में रहने वाले जीवों को कहा है। स्वयं वृक्ष को जीव धारी नहीं बताया है और भी देखो स० प्र० पृ० २६२ में।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृ० २१६। में लिखा है कि नीच गति से जीव पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, वृक्ष आदि का होना। इसका भी यही तात्पर्य है कि बुरे कर्मों के फल भोगने के लिये जीव वृक्षादिक में कृमि कीट कीड़े मकोड़े भिनुगे के लिये जो वृक्ष में होते हैं। जैसे गूलर आदि के फलों में कृमि कीट सूखे वृक्षों में घूणादि के लिये कहा है। (प्र०) जो स्वामी जी ने कीट पतङ्ग वृक्ष आदि का होना कहा तो वृक्ष का नाम क्यों लिखा इस से क्या जरूरत थी जब वृक्ष में अभिमानी जीव नहीं मानते थे तो वृक्ष को न लिखते। (उ०) यह आर्य्य शैली है सब ही आर्य्य ऋषि मुनि वृक्षों में कीड़े मकोड़े किसी न किसी रूप में लिखते आये हैं। इसी से इन्होंने भी लिखा है। क्योंकि इतने उत्तम मध्यम निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम मध्यम निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते हैं और जब अधिक पाप का फल

पशु आदि शरीर में भोग लिया है पुनः पाप पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और कर्मानुसार स्त्री पुरुष नपुंसक आदि जन्म धारण कर्ता और मर्ता रहता है इनन मुक्ति को नहीं पाता है। देखो यह कर्मों के अनुसार जीवों की ऊंच नीच गति बताई है इस में भी कहीं वृक्ष का जिकर नही आया अगर वृक्ष में जीव का होना मानते तो वृक्ष के लिये भी कहते आप लोग जानो न पहिचानो वैसे ही अन्धा धुन्ध जो कुछ मुंह से आवे सो ही कहने लग जाते हो भला कहीं लकड़ी में भी जीव होता है। ओ३म् २ हरे॥ देखो अगर स्वामी जी वृक्षों में जीव मानेंगे तो वह नास्तिक हो जावगे। क्योंकि वेद वृक्षादिकों में जड़िता मानता है।

मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रजष्येटा सम गच्छन्त सर्वे। अथर्व० ७। ७६। २।

(मयि:) मुझ में (उभयेः) दोनों प्रकार के (सर्वे) सब (देवा) दिव्य पदार्थ (साध्याः) साधने योग्य (स्थावर) व और (इन्द्रजयेष्ठाः) जीव को प्रधान रखने वाले (जङ्गम) पदार्थ है।

यह पं० जी का किया अर्थ है। तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर के ज्ञान क्रिया सुभाव से साधे हुए [स्थावर वृक्षादि हैं जैसे कर्ता के ज्ञान से साधी हुई यह घन्टा बजाने वाली घड़ी है। और [ज्येष्ठाः] कहते हैं ज्ञान वाले को इस से [जङ्गम] ज्येष्ठ सिद्ध होते हैं। क्यों कि स्थावरों की अपेक्षा से [जंगम] ज्ञान युक्त है इसी से इन में इन्द्रनाम वाला जीव है। [इन्द्रजयेष्ठा] [जंगम]

ओवधारी है [साधयाः] [स्थायर] ईश्वर की दी हुई शक्ति से बंधे हुए और साथ के काम लेने योग्य भी है ।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चः ।

य० १८७५ । स० प्र० पृ० १० ।

यह यजुर्वेद का वचन है । [जगतः] नाम प्राणियों का जो कि चलते फिरते हैं [तस्थुषः] अप्राणि नाम स्थावर जो कि पर्वत वृक्षादिक हैं । और आर्याभिविनय । १।४४। में [स्थावर] जड़ अप्राणि है । स० प्र० समुल्लास १३ ईसाइयों के खण्डन ७८ में जो वृक्ष जड़ पदार्थ है । और स० प्र० समुल्लास ७ । जैसे अप्राणी होते हुए पृथिवी भ्रमती वृक्षादि बढ़ते वा घटते रहते हैं । और स० प्र० पृ० -२२ में देखिये कहीं २ जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है । जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्ष हो जाते हैं; इस में जड़ भूमि वा जड़ जल के निमित्त से जड़ वृक्ष की उत्पत्ति दिखाई है । इस के अलावा ।

स्तियानामः संहताना स्थावर+जंगम प्राणय-प्राणी नाम मंडल० ६ सू० ४४ म० २१ ।

स्तियानमः । मिले हुए नहीं चलने वाले वृक्षादि अप्राणी और चलने वाले प्राणियों के ईश्वर कर्ता है ।

ऋ० वेद में देखिये । म० २ सू० ३१ म० ५ में-जगत् स्थातुः । [जगत्ः] मनुष्यादि और [स्थातुः] स्थावर वृक्षादि ।

म० ४ सू० ५३ म० ६ । में- जगत् स्थातुः । [जगत्ः] जंगम

चेतनता युक्त और [स्थातुः] स्थावर जड़ वृक्षादि हैं सत्यार्थ-प्रकाश पृ० ३५१ में सब जगत् "रक्तबीज से नहीं भरा था जो भर जाता तो पशु, पक्षी, मनुष्यादि, प्राणी और जलस्थ मगर, मच्छ, कच्छप, मत्स्यादि, वनस्पति आदि वृक्ष कहां रहते । देखो जितने जीवों के लिये शब्द आये हैं इन २ पर चिन्ह लगा दिये गये हैं, ऐसा और वनस्पति वृक्ष इन दोनों शब्दों के चिन्ह नहीं लगाये हैं । क्यों कि वृक्षादि जीव नहीं हैं । सासना नशनेः । इस का सार अंश [साशना०] यह जगत् दो प्रकार का है एक तो भोजन करता चेतन जंगम जीव सहित है । दूसरा [अनशन] अर्थात् जो जड़ और जीव सम्बन्ध से रहित और भोजन के लिये बना है । क्योंकि उसमें ज्ञान ही नहीं है और अपने आप चेष्टा भी नहीं कर सकता परन्तु उस पुरुष का अनन्त सामर्थ ही से । देखो यही तो हरकते इन्तजामी वृक्षों में बताई है श्री स्वामी दयानन्द जी ने अब जो पुरुष बुद्धिमान हो तो और कम बुद्धिवाला हो तो भी उन के लिये जड़ चेतन का समझना सहज होगया है और जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा वह लाभदायक फल वेद मन्त्रों से पावेगा ज्ञान में तरक्की करेगा ।

विज्ञापनम् । संवत् १९३५ इ० १८७८ ।

"सब को विदित हो कि जो जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल है उनको मैं मानता हूं विरुद्ध बातों को नहीं । इससे जो जो मेरे बनाये सत्यार्थ प्रकाश व संसार विधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तक के वचन बहुत से लिखे हैं । वे उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिखे हैं उनमें से वेदार्थ के

अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरोध का अप्रमाण मानता हूं जो जो बात वेदार्थ से निकली है उन सबको प्रमाण करता हूं।" इन सब बातों से सिद्ध होता है कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी वृक्षादि बेलों को जड़ बिना जीव वाले निर्जीव जैसे वह है उनको वैसे ही जड़ पदार्थ मानते थे।

गरीब रामजीलाल जाट जिला करनाल पानीपत था व भटी-पुर निवासी मैंने फिजी में पहिले पहिल एक महम्मद खां नाम का पठान मुर्गी का गला काट कर ऊपर को उछाल कर बहुत हंसता रहा और हंस कर खिल्ली उड़ाता था। मैं देख २ कर निराश होता रहता था एक दिन मैं कहने लगा कि मेरे दोस्त मुहम्मद खां एक दिन तेरा भी ईश्वर की कृपा से यही हाल होगा जैसा तुम मुर्गी का करते हो [मह०] क्या तुम पेड़ को नहीं काटते हो उसमें भी तो जीव है। [मैं] पेड़ में जीव नहीं है क्योंकि वह काटने के पीछे फिर भी ज्यों का त्यों होजाता है और जो चलता है वही जीव है। [मह०] मुसलमान हुये बिना कोई भी जन्नत नहीं पाता [मैं] क्या राम लक्ष्मण को मुक्ति नहीं मिली है [मह] कौन जाने वह कौन थे [मैं] मैं जानता हूं कि राम लक्ष्मण हिन्दू थे [मह०] चुप। जब मैं हिन्दू था जब कि यह बात है सन् ७ वा ८ की बात है फिर सम्बत ७५ में दर्शनान्द ग्रन्थ संग्रह शहर हाथरस में पढ़ा उसको पढ़ने से वृक्ष में जीव नहीं है ऐसा वैराग्य उत्पन्न होकर दिन २ भर इसी की फिक्र में जंगल २ व पेड़ों की चीर फार कर २ के खेतों में जाकर गाजर मूली आदि को चीर २ कर देखता था मैं यह समझता था कि जीवत्मा के टुकड़े नहीं होते हैं इसीवे मैं बड़े २ पेड़ को चीर कर देखता था

अब मैंने इतना इल्म होगया है कि वृक्ष को काट कर फिर काली साल उसही वृक्ष को मैं फूल और फल ज्यों का त्यों हरा छाल सहित रह सकता है । यह एक युक्ति से काटा जाता है जो नई युक्ती सिद्ध कर निकाली गई है । अमर बेल और दूब इनके कितने ही टुकड़े करदे कोई भी हानी नहीं होती है जीव वाले पदार्थों में ऐसा कदापि नहीं हो सकता है अमर बेल या दूब यह दोनों लाखों करोड़ों वर्ष तक कायम रह सकते हैं । जड़ पदार्थ ही बहुत समय तक काम करते रहते हैं क्योंकि यह थकते नहीं हैं । जीवधारियों से बहुत समय तक काम नहीं होता है इसलिये कि वह जीव होने से थक जाते हैं । एक वृक्ष दो ८७१२ वर्षों तक खड़ा रह सकता है यह ऐसी बलवान शक्ति जड़ पदार्थों में है । चेतनों में नहीं ।

इति जीव वृक्ष मीमांसा दर्शन ॥ सम्वत् १९८५ ॥ श्रावन सुदी ७ श्रावण दूसरा

पता-लेखक गरीब रामजीलाल आर्य
सदर समाज देहली ।

॥ इति शुभम् ॥